

अनतोली तमीलिन

पृथ्वी के रूप का पता कैसे चला?



इस मानचित्र पर यह देखा जा सकता है कि प्राचीन युग में विभिन्न जनगण पृथ्वी की कल्पना किस रूप में करते थे।



मानचित्र श्री क्रिस्टोफ़र रेनबो के सौजन्य से।

अनातोली तमीलिन





पृथ्वी के रूप का पता कैसे चला?

चित्रकार: यूरी स्मोल्निकोव

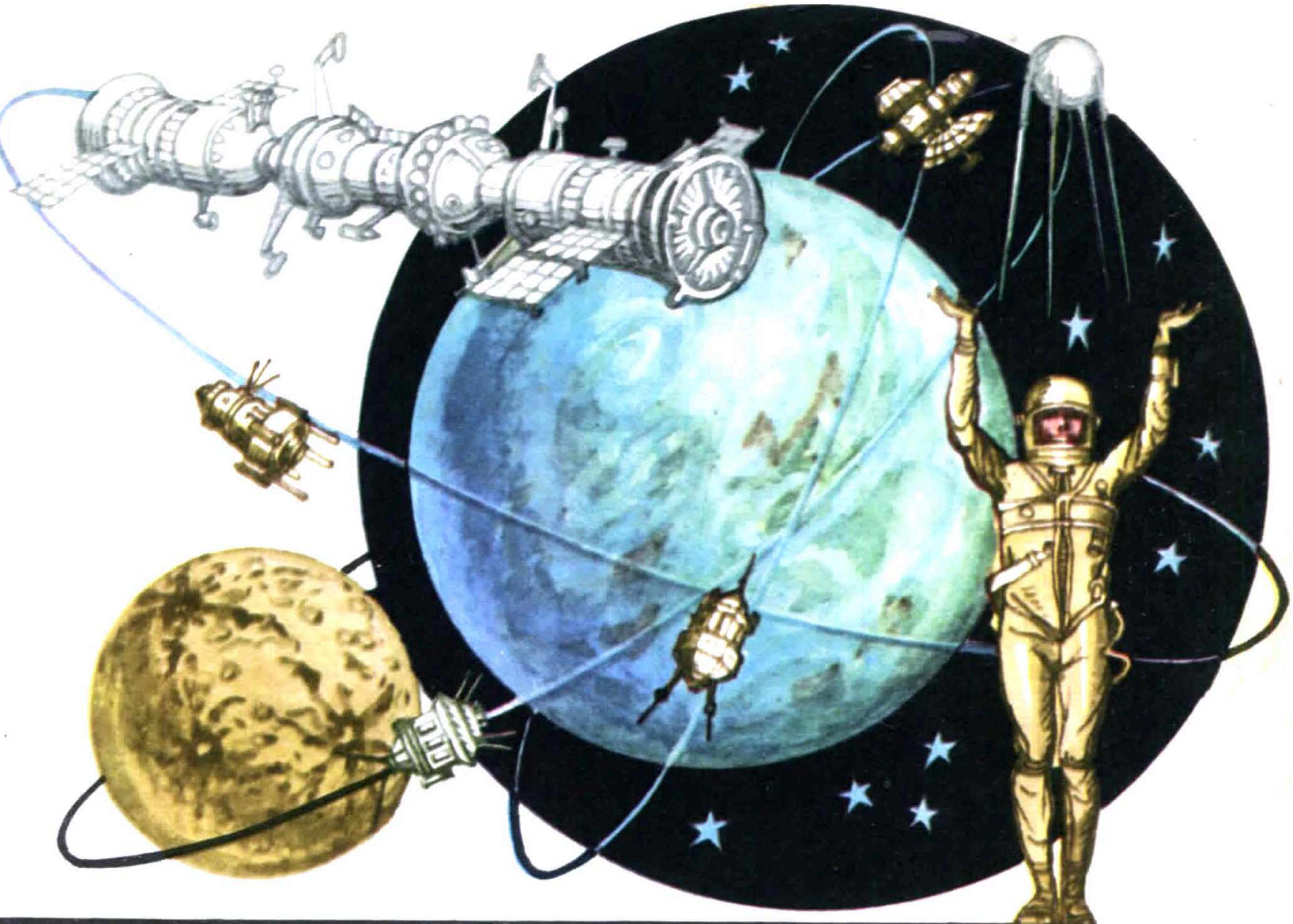
अनुवादक: योगेन्द्र नागपाल





रादुगा प्रकाशन
मास्को
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई. रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५





पृथ्वी का रूप कैसा है?

पृथ्वी का रूप कैसा है? – अजीब सवाल है न? हर कोई जानता है कि पृथ्वी गोल है।

हम बीसवीं सदी के लोगों के लिए पृथ्वी का गोल आकार ऐसी ही स्वाभाविक बात है, जैसे कि आकाश का नीला रंग, घास और पत्तियों का हरा रंग। ऐसा इसलिए है कि बचपन से ही हम हर किसी के मुंह से सुनते हैं "पृथ्वी गोल है!" लेकिन क्या यह बात इतनी स्वतःस्पष्ट है?

बाहर खेतों में जाओ। इतनी दूर निकल जाओ कि चारों ओर क्षितिज से क्षितिज तक घास-पात और रंग-बिरंगी पंखुड़ियोंवाले फूल ही फूल हों। अब इधर-उधर नज़र दौड़ाओ – क्या दिखा? क्या पृथ्वी गोले जैसी उभारदार है? नहीं तो! कहीं गोले जैसा कोई उभार नहीं नज़र आता। क्षितिज तक सपाट ज़मीन ही फैली हुई है। उस पर हर टीला, हर झाड़ी और हरेक पेड़ दिखाई देता है। तो यह किसने कहा कि पृथ्वी गोल है?

जब कम्प्यूटरों ने कृत्रिम भू-उपग्रहों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार धरातल का हिसाब लगाया तो पता चला कि हमारे ग्रह की आकृति जटिल है – कुछ-कुछ नाशपाती जैसी। उत्तरी गोलार्ध

ध्रुव के पास थोड़ा लंबा खिंचा हुआ है और दक्षिणी गोलार्ध चपटा-सा। धरातल पर पिचकनें हैं और उभार भी। यही नहीं यदि भूमध्यरेखा पर पृथ्वी को दो भागों में काटा जाये, तो इस काट पर भी बिल्कुल सही वृत्त नहीं बनेगा, बल्कि वह थोड़ा लंबा खिंचा होगा। वाकई "नाशपाती" है, सो भी ऊबड़-खाबड़। तो ऐसी आकृति का क्या नाम रखा जाये?

वैज्ञानिक बड़ी देर तक सोचते रहे, कई नामों पर उन्होंने विचार किया और अंततः यह तय किया कि पृथ्वी के रूप को भू-आभ कहेंगे। यानी पृथ्वी पृथ्वी जैसी ही है। सो, पृथ्वी हमारी गोल तो है, लेकिन पूरी तरह से नहीं। लोगों ने पृथ्वी के रूप का पता कैसे लगाया – यह किस्सा काफ़ी लंबा है और बड़ा दिलचस्प भी। इसी के बारे में मैं तुम्हें इस पुस्तक में बताऊंगा।



अध्याय एक





दसियों लाख साल पहले पृथ्वी पर पहले मानव प्रकट हुए थे। दस लाख बहुत बड़ी संख्या है। यदि तुम एक सेकंड में एक अंक बोलो तो दस लाख तक गिनने के लिए तुम्हें रात-दिन, खाने-पीने, पढ़ाई और आराम करने के लिए रुके बिना ठीक ग्यारह दिन, तेरह घंटे, छयालीस मिनट और चालीस सेकंड तक गिनती गिननी होगी।

शुरू-शुरू में पृथ्वी पर लोग बहुत थोड़े-से थे। वनों-मैदानों के दूसरे निवासियों के सम्मुख वे असहाय लगते थे। मनुष्य के पास हिंसक जंतुओं से अपनी रक्षा करने और अपने लिए आहार पाने के वास्ते मज़बूत नाखून और तेज़ दांत नहीं थे। पाले से बचने के लिए उसके शरीर पर घने, गरम रोयें नहीं थे। बाढ़ से बच भागने या जंगल की आग – दावानल – से बचकर उड़ भागने के लिए उसके पास मज़बूत टांगें या पंख नहीं थे। उसके पास बस थोड़ी-सी बुद्धि थी और अनुभव संचय करने की क्षमता थी।



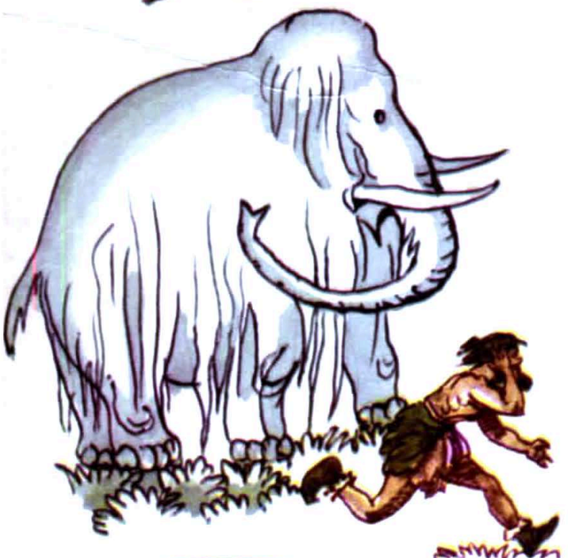
पृथ्वी पर पहले लोगों का जीवन कठिनाइयों से भरा था। भोजन पाना ही बहुत बड़ी समस्या थी। औरतें सारा-सारा दिन कंद-मूल बटोरती रहती थीं और मर्द मछली या कोई जानवर पकड़ने की कोशिश करते थे। उन दिनों लोग गोत्रों में रहते थे, यानी बहुत बड़े परिवार में – माता-पिता, बच्चे, दादा-दादी, नाना-नानी, मामा-मामी, चाचा-चाची, भतीजे-भानजे। सब एक दूसरे के संबंधी होते थे। शाम तक वे खाने-पीने की तरह-तरह की चीज़ें जमा कर लेते और उस गुफ़ा में ले जाते जहां वे रहते होते। वहां अलाव के पास खाना बांटते और खाते। सुबह तड़के फिर से वही क्रम शुरू होता। ऐसे में दिन बीत जाये वही बहुत अच्छा है, कल की कल देखी जायेगी।



धीरे-धीरे आदिम मानव ने श्रम और शिकार के औज़ार बनाने सीखे और बड़ी देर तक वह पत्थर, लकड़ी और हड्डी के ही औज़ार बनाता रहा। पत्थर की कुल्हाड़ी या चाकू बना पाना कोई आसान काम नहीं था। इसके लायक पत्थर का टुकड़ा ढूंढ़ने में ही कितना समय गंवाना



होता था। इसके लिए अपने डेरे से दूर तक जाना पड़ता था। हां, बहुत दूर नहीं, ताकि रास्ता न भूल जायें। लोग दर्रों में जाते थे, जहां तेज़ जल धाराएं चट्टानों से टूटे टुकड़ों को घिस-घिसकर गोल कंकड़ बनाती थीं। समुद्र किनारे, पथरीले तटों पर भी लोग अपने काम के पत्थर ढूंढ़ते थे।



समय-समय पर आदिम लोगों को पत्थरों के बीच कुछ विशेष पत्थर भी मिलते थे – ये टूटते नहीं थे, लेकिन पिचक जाते थे। इन्हें दो बड़े पत्थरों के बीच देर तक कूटते रहने पर ऐसे कुछ पत्थरों से चाकू के लिए पतला पत्तर बन जाता था, या कुल्हाड़ी के लिए मोटा फलक। इन औज़ारों की धार तेज़ की जा सकती थी।

तुम समझ गये होगे कि ये धातु पिंड थे – तांबे और सोने के, कभी-कभी लोगों को चांदी भी मिल जाती थी।

इस तरह सदियों के बाद सदियां और सहस्राब्दियों के बाद सहस्राब्दियां बीतती गयीं। आदिम मानवों का जीवन बहुत धीरे-धीरे बदलता था। उन दिनों कोई यह सोचता भी नहीं था कि पृथ्वी कितनी बड़ी है। चारों ओर सभी कुछ विशाल लगता था। नदियां और झीलें अपार थीं। आदिम लोगों के पास नावें जो नहीं थीं। मैदान, जंगल और पहाड़ असीम लगते थे, क्योंकि लोगों ने अभी कोई सवारी नहीं खोजी थी। बीहड़ रास्ते पर पैदल भला कितनी दूर जाया जा सकता है? डर भी तो लगता है! जंगलों-मैदानों में रक्तपिपासु जंतु रहते हैं। झीलों, सागरों-महासागरों में हिंसक मछलियां हैं। हर कोई पथिक को हड़प जाने की ताक में रहता है। हड़पेंगे नहीं तो भी डरा तो डालेंगे। उन दिनों दूर की यात्राओं की बातें कोई सोचता तक नहीं था। सो आदिम लोगों का यही ख़याल होता था कि उनका डेरा और उसके आस-पास जो कुछ है वही सारी पृथ्वी है।





लोग अपना जन्म-स्थल क्यों छोड़ते थे



वैज्ञानिकों का मत है कि सबसे पहले मनुष्य अफ़्रीका, एशिया और यूरोप के इलाक़ों में प्रकट हुआ। इन इलाकों में ही आदिम मानव की अस्थियों और उसके अनघड़ औज़ारों के सबसे पुराने अवशेष मिले हैं। अमरीका महाद्वीप और आस्ट्रेलिया में ऐसी खोजें नहीं हुई हैं। क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि लोग कालांतर में वहां जा बसे? लेकिन लोग नये स्थानों पर क्यों जाते थे? वे अपना जन्म-स्थल क्यों छोड़ते थे? और सागर का विस्तार वे कैसे पार करते थे?

पता चला है कि ऐसे देशांतरण के कई कारण थे। सबसे बड़ा कारण था कि लोग भुखमरी से बचने का उपाय खोजते थे। आदिम शिकारी वन्य जीवों के झुंडों के पीछे-पीछे चलते थे। जहां वे जीव जाते, वहीं शिकारी भी। कुछ गोत्रों को अपने अत्यंत लड़ाकू पड़ोसियों से बचने के लिए भागना पड़ता था। ऐसे भी होता था कि स्वयं पृथ्वी जीव-जंतुओं और लोगों को उन स्थानों से भगाती थी, जहां वे रहते आये थे।

हमारे ग्रह के इतिहास में वैज्ञानिकों ने अनेक ऐसे युगों का पता लगाया है जबकि उष्म जलवायु का स्थान शीत ले लेता था, और उसके बाद फिर से जलवायु उष्म होने लगती थी। ऐसा क्यों होता था – यह बताना कठिन है। प्रायः ऐसा तभी होता था जब भूगर्भ में प्रबल शक्तियां जाग उठती थीं। भयंकर भूकंपों से पृथ्वी दहल उठती। धरातल पर परतें पड़ जातीं। नये पर्वत उभरते, ज्वालामुखी धुआं छोड़ते और पृथ्वी पर गहरी दरारें पड़ जातीं। जाग उठे ज्वालामुखी वायुमण्डल में इतनी राख फेंकते कि वायु पारदर्शी न रहती। सूरज लंबे अरसे के लिए काली घटाओं के पीछे छिप जाता और पृथ्वी ठंडी पड़ने लगती ...

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि समय-समय पर स्वयं सूर्य का ही तेज़ मंद पड़ जाता था और पृथ्वी को उससे पहले से कम उष्मा मिलने लगती थी। जो भी हो, ऐसे युगों में ही ऊंचे स्थलों पर हिमनद बनने लगते थे। महासागरों से वाष्पित होनेवाला जल हिम बनकर पृथ्वी पर



गिरता और हरी घाटियों पर हिम की मोटी चादर बिछ जाती। पहाड़ों में हिमनद बढ़ते और भारी होते जाते और महासागरों में जल कम होता जाता। कहीं-कहीं उथली जगहों पर तला भी दिखाई देने लगता और वह थल बन जाता। संसार के एक भाग से दूसरे तक स्थल-सेतु बन जाते।

वैसे, हम तुम्हें यह भी बता दें कि ऐसे सबसे भयानक हिम युग पृथ्वी पर मनुष्य के प्रकट होने से काफ़ी पहले ही हुए थे। लेकिन मनुष्य को भी ऐसे युग देखने को मिले।

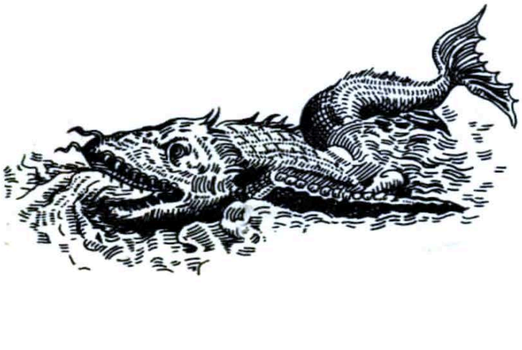
स्वयं अपने भार के प्रभाव से हिमनद पर्वत शिखरों से मैदानों की ओर बढ़ चलते। तृणभक्षी जीव ठंड से बचने के लिए दूर भागते और उनके पीछे-पीछे हिंसक जंतु भी। लोग भी उनके पीछे जाते।

स्थल-सेतुओं के रास्ते पशुओं के झुंड और आदिम शिकारी एशिया से अमरीका महाद्वीप पहुंच सकते थे। दक्षिणी चीन सागर के उभर आये तले और ज़ोंद द्वीपों के रास्ते वे आस्ट्रेलिया पहुंच सकते थे।

हिम युग हज़ारों वर्षों तक चलते थे। लेकिन यह भी चिरकाल नहीं है! शनैः-शनैः घटाएं घटतीं, सूरज झांकता और फिर से गर्मी पहुंचाने लगता। उसकी गर्मी से बर्फ़ पिघलने लगती और हिमनद पीछे हटने लगते। खाली हो गयी ज़मीन पर फिर से हरी-हरी घास उगती, बन बनते। घनी चरागाहों में बड़े-बड़े जानवर: मैमथ और बालदार गेंडे, हिरण और घोड़े आते। उनका पीछा करते शिकारी भी अपने पुराने निवास-स्थल छोड़ देते।

उधर सूरज की गरमी बढ़ती जाती। तूफ़ानी नदियां सागरों-महासागरों में मिलतीं। जल का स्तर ऊंचा उठता और स्थल-सेतु डूब जाते। दूर चले गये लोग पीछे रह गये लोगों से सदा के लिए अलग हो जाते।

कई बार जलवायु इस तरह ठंडी और गरम हुई। हर बार ठंड और भुखमरी से बचने के लिए जीव-जंतु और मनुष्य उत्तरी गोलार्ध में दक्षिण को तथा दक्षिणी गोलार्ध में उत्तर को जाते – जहां ठंड कम होती। सब कुछ गतिशील हो जाता – पशु-पक्षी और लोग सभी नये स्थानों पर जा बसते। बहुतों के लिए यह यात्रा असह्य होती वे मारे जाते, लेकिन बहुत से ज़िंदा बचे रहते। ऐसे हर देशांतरण के साथ मनुष्य के जीवन में कुछ नये परिवर्तन आते।



लोगों ने मिलकर रहना कैसे सीखा

शिकार आहार पाने का अच्छा साधन है, लेकिन इसका कोई भरोसा नहीं है। आज हिरणों का झुंड मिल गया और कल नहीं। लेकिन भूख तो रोज़ लगती है।

किसी ने कुत्ते को पालतू बना लिया। शायद वह शुरू में बीमार या घायल रहा हो, मनुष्य को उस पर दया आयी, उसने उसका उपचार किया, उसे भोजन दिया। कुत्ते के साथ शिकार अच्छा होने लगा। कुत्ता जानवर की टोह लेता, आदमी उसका शिकार करता। मांस और चर्म वह अपने काम लाता, हड्डियां और अंतड़ियां अपने चौपाये सहायक को देता।

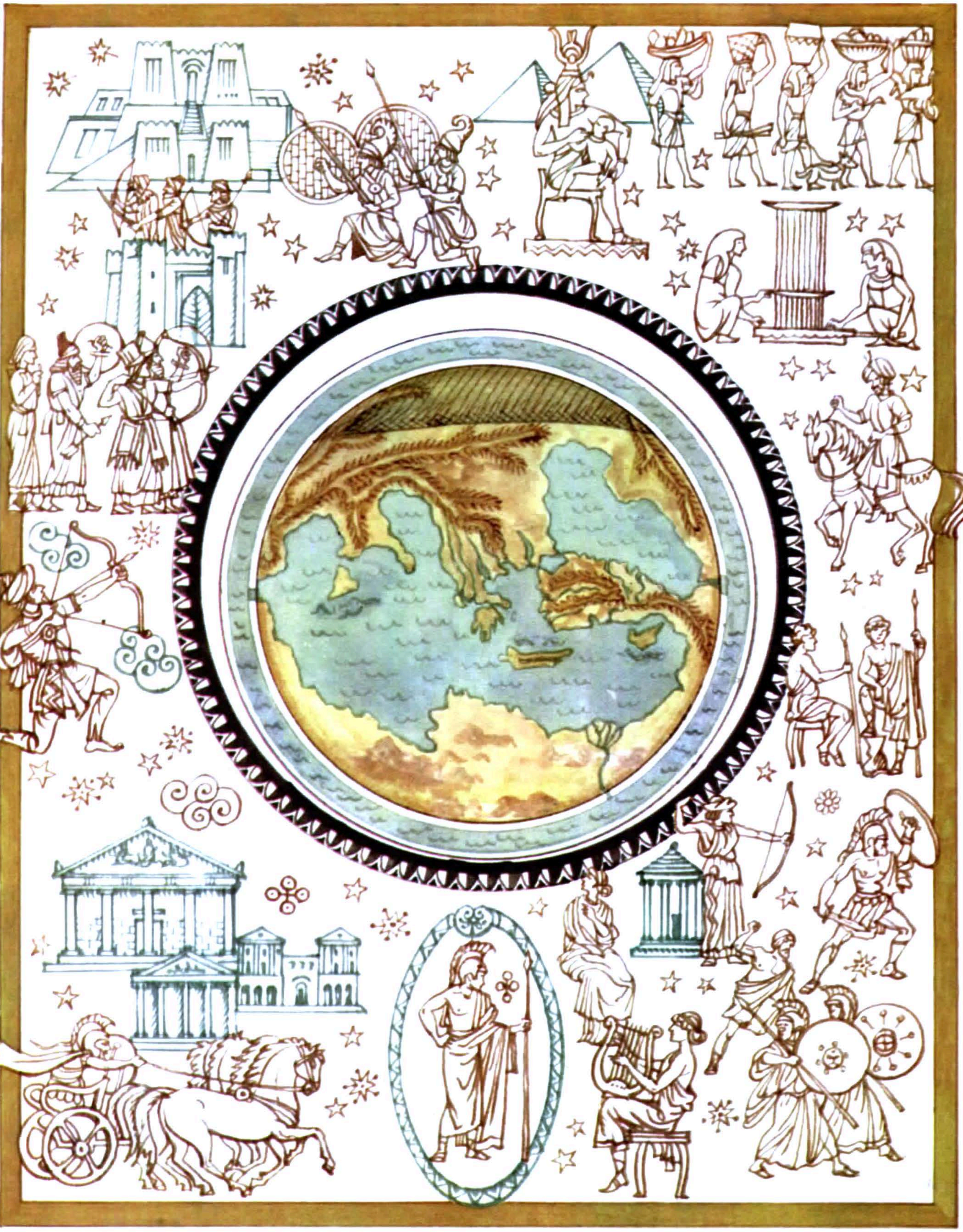
धीरे-धीरे लोग दूसरे जंगली जानवरों को भी पालतू बनाने लगे। यह कोई आसान काम नहीं था और न ही जल्दी हो जानेवाला। पर ख़ैर, आख़िर उनके पास पालतू मवेशी हो गये।

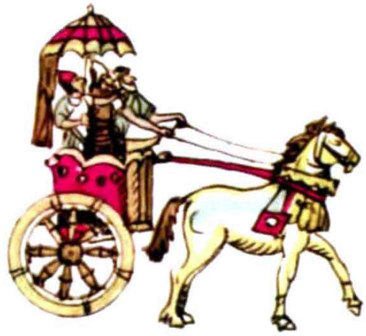
कंद-मूल बटोरने का काम भी अब औरतों और बच्चों के लिए भारी पड़ने लगा। डेरों में खानेवालों की संख्या बढ़ रही थी। सबके लिए भला कहां से बटोरा जाये? औरतों ने देखा कि जंगली अन्न के बीज यदि नदी तट पर नम कीच में बो दिये जायें तो यहां जंगली मैदान में उगे पौधों से अधिक बड़े और मज़बूत पौधे उगते हैं। उन पर बालियां भी बड़ी आती हैं और दाने भी भरे-पूरे होते हैं। और फिर सारा-सारा दिन एक-एक बाली करके ढूंढ़ने की भी ज़रूरत नहीं। जहां बीज बोये वहीं उग आये। सो लोग पौधों के बीज जान-बूझकर काई-कीच में दबाने में लगे। एक तो इसलिए कि वे अच्छी तरह उगें, दूसरे इसलिए कि चिड़ियां न चुग लें। इस तरह कृषि का जन्म हुआ।

पशुपालन और कृषि से लोग तुरंत ही अधिक समृद्ध हो गये। लेकिन अब उनका कारोबार भी जटिल हो गया: शिकार भी करो, मवेशियों की देखभाल भी करो, ज़मीन की जुताई-बुआई भी करो, मिट्टी के बर्तन भी बनाओ और हथियार भी। एक गोत्र में सभी कामों के लिए लोग पूरे नहीं पड़ते थे। सो लोग सोचने लगे कि क्यों न वे पड़ोसी गोत्र के साथ मिल जायें।

इस तरह गोत्र कबीलों में मिलने लगे। बड़े-बड़े समूहों में जीना अधिक निरापद था, परंतु साथ ही अधिक कठिन भी। ऐसे में काम कैसे बांटा जाये – कौन क्या करे? शिकार और आय का बंटवारा कैसे हो – किसे अधिक मिले, किसे कम?

तब यह तय किया गया कि सबसे अधिक समझदार लोग चुनकर कबीले की पंचायत बनायी जाये। उसमें हर गोत्र का एक-एक आदमी हो ताकि किसी को बुरा न लगे। शिकार और युद्ध के लिए कबीले भी संगठित होते थे, अस्थायी कबीला-संघ बनाते थे। कृषि के लिए स्थायी संघ की ज़रूरत थी। नये खेत के लिए दलदल सुखाना हो या नहर खोदनी हो अथवा बाढ़ से बचने के लिए बांध बनाना हो – ये सभी काम तभी हो सकते थे, जबकि मिल-जुलकर काम किया जाये। नदियों और झीलों के लिए उन सीमाओं का कोई महत्व नहीं था, जो लोगों ने पृथ्वी पर बना ली थीं। सूखे से वे लोग अधिक पीड़ित होते थे जो नदी के ऊपरी मैदान में रहते थे और बाढ़ से वे, जो निचले मैदान में। साझे काम से ही दोनों अपना जीवन बेहतर बना सकते थे। बहुत समय बीतने पर ही लोग यह बात समझ पाये। लेकिन आखिर समझ ही गये। शनैः-शनैः पृथ्वी पर मानव के प्रकट होने के हज़ारों साल बाद पहले राज्य बनने लगे। बेशक, वास्तव में सब कुछ कहीं अधिक जटिल था। मैंने तो तुम्हें बस इतना बताया है कि यहां भी ज़रूरत ने, मजबूरी ने लोगों को संगठित होने का रास्ता सुझाया।





इतिहासकारों का मत है कि विकसित संस्कृतिवाले पहले राज्य नदियों के मैदानों में प्रकट हुए थे। यह कहना कठिन है कि कहां सबसे पहले ऐसे राज्य बने। शायद दजला और फ़रात के दोआब में, या हो सकता है सिंधु और गंगा के तटों पर, या फिर भरी-पूरी नील नदी के किनारे... यहां बसे लोगों ने औरों से पहले जुताई और बुआई करना, ज़मीन नापना, नहरें खोदकर खेतों में पानी लाना सीख लिया था। अयस्क से धातु गलाने और गगनचुंबी भवन बनाने का काम भी यहीं पर सबसे पहले शुरू हुआ।

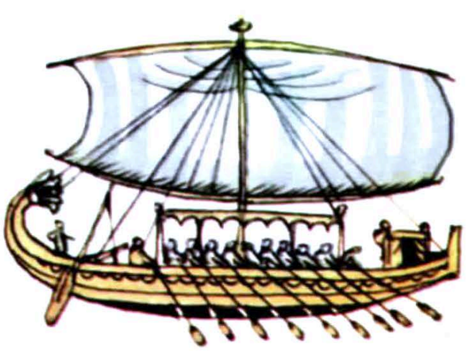


प्राकृतिक सम्पदा पृथ्वी के सभी भागों में एक सी नहीं है। ऐसा हो सकता था कि कहीं पर अयस्क तो बहुत है, लेकिन नमक नहीं। दूसरे स्थान पर इससे उलट बात हो सकती थी। किसी बस्ती या शहर में सुंदर कपड़ा बनाया जाता था तो कहीं बर्तन। लोगों के पास जो कुछ अधिक था उसका वे आदान-प्रदान करने लगे। एक दूसरे के यहां माल ले जाने लगे। व्यापारी प्रकट हुए। व्यापार का जन्म हुआ। व्यापारी बड़े सूझ-बूझवाले व्यक्ति निकले। उन्होंने देखा कि घिसे-पिटे रास्ते से अधिक दूर जाने का जो खतरा मोल लेगा वही अधिक लाभ पाकर लौटेगा। सो, पहली व्यापारिक यात्राएं शुरू हुईं। तभी लोगों को यह जानने की आवश्यकता हुई कि कहां कैसे लोग रहते हैं, उनके पास किस चीज़ की प्रचुरता है और किसकी कमी, कैसा उनका देश है।



भूमध्यसागर के तटों पर बहुत पुराने ज़माने से लोग बसते आये हैं। यहां सदा अनेक जन-जातियों के लोग रहते थे।

यहीं पर यूनानी संस्कृति का जन्म हुआ जो प्राचीन युग की पृथ्वी की विकसित सभ्यताओं में से एक है। प्राचीन यूनान के दार्शनिक और विद्वान विज्ञान के लिए बहुत बड़ी धरोहर छोड़ गये हैं। वे ही उन लोगों में थे जिन्होंने पहले मानचित्र बनाये। यूनानी अपने मानचित्रों में पृथ्वी को एक बड़े द्वीप के रूप में दिखाते थे जिसके बीचोंबीच समुद्र है। इस द्वीप के चारों ओर वे ओशिएन नामक नदी दिखाते



थे, जिमका कोई आदि-अंत नहीं था।

इस पृथ्वी को प्राचीन यूनान में ओयकुमेना कहते थे, यानी "वह धरती जिस पर मानवों का वास है"।

एशिया, भारत, चीन और ब्रिटानिया के कुछ भागों में भी घनी आबादी थी। भूमध्यसागर तटीय ओयकुमेना और उनके बीच हज़ारों किलोमीटर का दुर्गम रास्ता था, पहाड़ और रेगिस्तान थे। विरला ही कोई निडर व्यक्ति कारवां ले जाने या छोटे-छोटे जहाज़ों पर सात समुद्र पार जाने का साहस करता था। लेकिन जो वहां हो आता वह अजीबोगरीब वस्तु तो लाता ही, साथ में विचित्र देशों और आश्चर्यजनक लोगों के बारे में ढेरों कहानियां भी सुनाता। यात्री सम्पन्न देश भारत के बारे में बताते, जहां "सोने और रत्नों की खानें हैं", शक देश के निस्सीम मैदानों का वर्णन करते, जहां असंख्य घोड़े हैं और आदमकद से भी बड़ी घास उगती है। वे बताते कि मध्य एशिया के कारीगर अमूल्य धातु से कितने अच्छे शस्त्र बनाते हैं और ब्रिटानिया में कितना रांगा होता है जिसकी कांसा बनाने के लिए इतनी ज़रूरत है।

उन दिनों हर यात्रा एक असाधारण घटना होती थी। साहसी यात्रियों के नाम इतिहास में बने रहते थे। उनके बारे में किंवदंतियां प्रचलित होती थीं और लोग गीत गाते थे। पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोग उनकी यात्राओं के किस्से सुनाते थे। परदेस की, परदेसी लोगों की कहानियां सुनने-सुनाने से अधिक रोचक और कुछ नहीं था। शायद तभी सुननेवालों के मन में यह सवाल उठा हो: "कैसी है हमारी पृथ्वी? किसके जैसी? उसका ओर-छोर कहां है?"



अध्याय दो



जब लोग यह सोचते थे कि पृथ्वी सपाट है

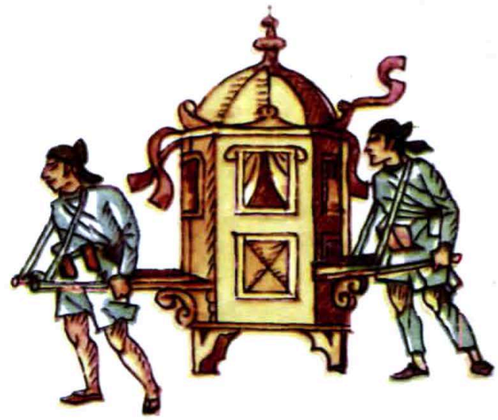


लोग पृथ्वी पर जितनी अधिक यात्राएं करने लगे, उतना ही अधिक उनके मन में यह विचार उठने लगा: "पृथ्वी कैसी है, उसका रूप क्या है?" विद्वानों का ऐसा मत है कि इस बात पर सबसे पहले जिन लोगों ने सोच-विचार किया, उनके देश का नाम था त्यान-स्या, जिसका अर्थ है "मध्य राज्य"। बूझोगे कौन-सा देश है यह? हां, चीन ही – संसार का एक सबसे प्राचीन राज्य। चीन का सर्वोच्च शासक सम्राट होता था। समय-समय पर नये सम्राट को यह सूझती कि वह अपने राज्य की सीमाओं का ठीक-ठीक पता लगाये। बस, इस काम के लिए राजधानी से चारों दिशाओं को सम्राट के अधिकारी भेजे जाते।



कुछ अधिकारी आरामदेह रथों में बैठकर जाते। हर रथ में एक गुप्त यंत्र होता था, जिसकी सुई सदा एक ही दिशा में रहती थी। ऐसा यंत्र पास में हो तो कभी रास्ते से नहीं भटक सकते। चीन में इसे "दक्षिण सूचक" कहा जाता था।

यह प्राचीन गुप्त यंत्र आज तक बना रहा है। इसे कुतुबनुमा या कम्पास कहते हैं और सब लोग जानते हैं कि यह कैसे काम करता है। कोई पेचीदा बात नहीं है – एक डिबिया है और उसमें लगी है चुम्बकीय सुई। इसका नीला सिरा दक्षिण दिशा दिखाता है और लाल सिरा उत्तर दिशा।



कई-कई दिनों और सप्ताहों तक रथ मैदानों, रेगिस्तानों में चलते जाते थे। सम्राट के अधिकारी जिधर भी जाते वहीं देखते कि तारे सदा पूरब से पश्चिम को चलते हैं। "ऐसा क्यों है?" वे सोचते। लेकिन अपने इस प्रश्न का कोई उत्तर उन्हें न मिलता।

दूसरे अधिकारी पहाड़ों में जाते। वहां के संकरे रास्तों पर रथ तो चल नहीं सकते, सो उन्हें पालकियों में ले जाया जाता। तंग पालकियों में वे धचके खाते जाते और हैरान होते: "क्या कारण है कि मध्य राज्य का एक भाग इतना ऊंचा है, आसमान को ही छूता है, और दूसरा भाग नीचा है?" लेकिन वे भी अपने प्रश्न का कोई उत्तर न सोच पाते।

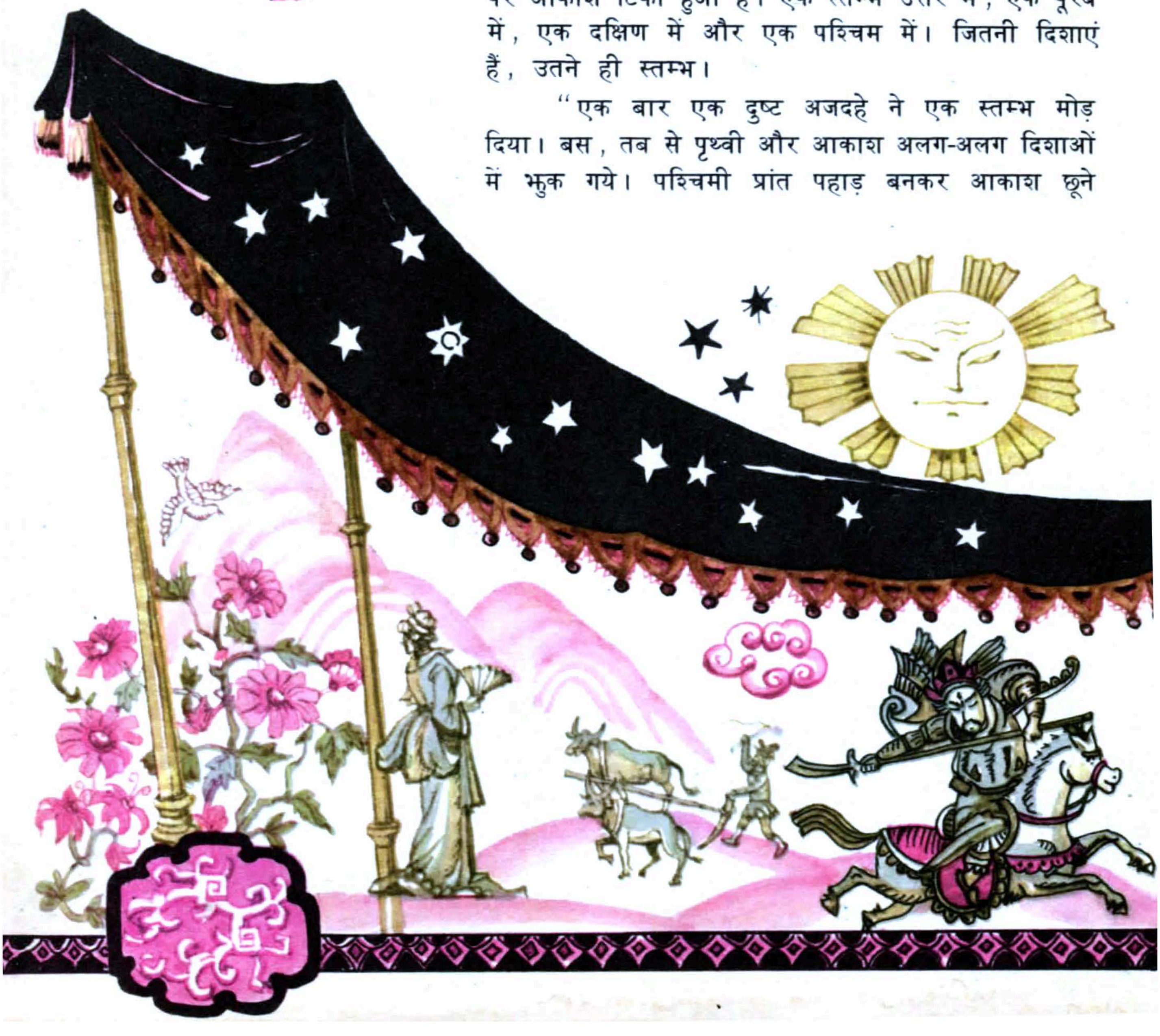




कुछ और अधिकारी नावों पर प्रस्थान करते। छोटी-बड़ी नदियों में और नहरों में नावें तैरती जातीं। दास-चाकर अधिकारियों के सिर पर छाता ताने रहते, पंखा झलते। "सम्राट के देश में सभी नदियां पश्चिम से पूरब को ही क्यों बहती हैं?" अधिकारियों के मन में यह सवाल उठता, लेकिन खूब दिमाग लड़ाने पर भी उन्हें कोई जवाब न सूझता।

सम्राट के दरबार में जो विद्वान थे वे भी इन पहेलियों में उलझ गये। उधर सम्राट था कि सभी प्रश्नों के उत्तर पाना चाहता था, सो उन्होंने अंततः यह तय किया: "चलो, यह मान लेते हैं पृथ्वी सपाट है, चपाती जैसी, कटे-छंटे सिरोंवाली। पृथ्वी के हर सिरे पर एक स्तम्भ है, जिस पर आकाश टिका हुआ है। एक स्तम्भ उत्तर में, एक पूरब में, एक दक्षिण में और एक पश्चिम में। जितनी दिशाएं हैं, उतने ही स्तम्भ।

"एक बार एक दुष्ट अजदहे ने एक स्तम्भ मोड़ दिया। बस, तब से पृथ्वी और आकाश अलग-अलग दिशाओं में झुक गये। पश्चिमी प्रांत पहाड़ बनकर आकाश छूने



लगे, जबकि पूरबी प्रांत समुद्र की ओर झुक गये। सो मध्य राज्य में नदियां पूरब को बहने लगीं, और आकाश पर तारे पश्चिम को चलने लगे..."

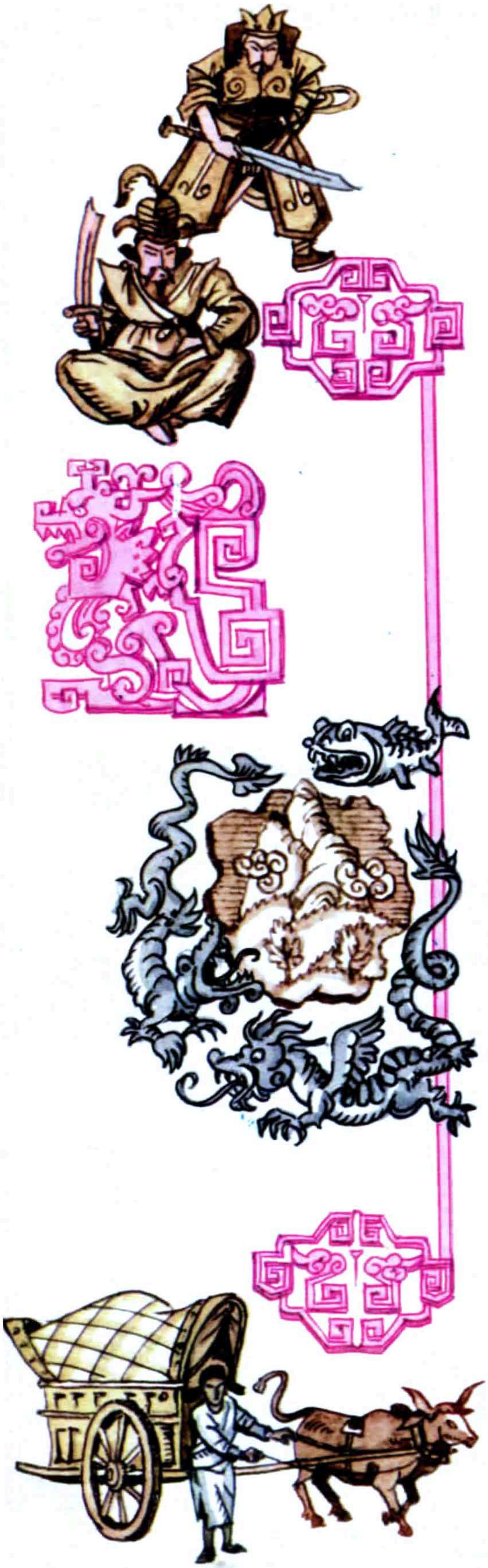
यह बात सबको जंच गयी और सब ऐसी व्याख्या से संतुष्ट हो गये।

चीनियों ने अपने देश के बारे में पांच सौ पुस्तकें लिखीं। कागज़ के पांच सौ मोटे बंडल, जिनमें देश के सभी प्रांतों का वर्णन था, यही नहीं उनसे परे जो इलाके थे, उनका भी वर्णन था।

लेकिन फिर एक बहुत बड़े युद्ध के बाद चीन में एक नये सम्राट का राज हुआ। वह अजदहे जैसा दुष्ट था और ऊपर से मूर्ख भी, जिससे उसकी दुष्टता और बढ़ती थी। उसने पुस्तकों में पढ़ा कि मध्य राज्य की सीमाओं के पार भी लोग रहते हैं और चीनियों से किसी दृष्टि से बुरे नहीं हैं। यह भला कैसे हो सकता है? सम्राट ने तुरंत वे सारी पुस्तकें जला डालने का आदेश दिया, जिनमें दूसरे देशों का वर्णन था। उसके हुक्म से सभी चीनियों के मन में यह बात बिठायी जाने लगी कि चीन से परे कुछ भी रोचक नहीं







है। इस दुष्ट सम्राट ने चीन का नाम भी बदलकर "चुन-हुआ-गो" कर दिया, जिसका अर्थ है "फलता-फूलता मध्य राज्य"। तब से चीनियों के लिए उनके देश का यही नाम हो गया, हालांकि यहां सब कुछ इतना फलता-फूलता नहीं था।

मेहनतकश लोग तो गरीबी में, चिंताओं और दुखों से घिरे जीवन व्यतीत करते थे। अधिकारी और धनी लोग ही ऐशो-आराम करते थे। संसार में अक्सर ऐसा होता है: दशा जितनी बुरी होती है, शब्द उतने ही सुंदर होते हैं...

अधिकारी अपने सम्राट को "देव पुत्र" कहते थे और उन्हें इस बात की बड़ी चिंता रहती थी कि "देव पुत्र" की प्रजा में कोई भी चीन से बाहर पांव तक न रखे, सो उन्होंने चीन का एक और नाम रख दिया "सी हाय", जिसका अर्थ है "चार समुद्र"। अधिकारियों का कहना था कि चीन ही सारी पृथ्वी है। हां-हां, सारी पृथ्वी पर बस चीन ही है। और वह चारों दिशाओं में तूफ़ानी सागरों से घिरा हुआ है, जिनमें भीमकाय मच्छ और भयावह अजदहे रहते हैं। बहुत से लोग इन बातों पर विश्वास करते थे और अपने घरों में ही बैठे रहते थे।

बहुत से लोग विश्वास करते थे, लेकिन सभी नहीं। आज भी हमें प्राचीन चीनियों की यात्राओं के वृत्तांत मिलते हैं।

घोड़ों पर सवार अधिकारी जाते, भारी गाड़ियों में राजनय जाते, गुप्तचर लुक-छिपकर बढ़ते। भिक्षु पैदल जाते, व्यापारियों के कारवां चलते। चीनी यात्री केंद्रीय और मध्य एशिया के अनजान इलाकों में भी पहुंचते और देखते कि यहां भी सभ्य लोग रहते हैं। खेती करते हैं, तरह-तरह के औज़ार, कपड़ा, आभूषण बनाते हैं। चीनी दूर के देशों में अपना माल ले जाकर बेचते। यहां के निवासियों के पास भी बेचने के लिए कई चीज़ें थीं। उनमें बहुत सी तो चीनी चीज़ों से किसी लिहाज़ में कम नहीं थीं।

जो लोग पहाड़ों के पार दक्षिण की ओर जाते, वे आश्चर्यजनक देश भारत पहुंचते, जहां ऋषि-मुनि रहते थे।



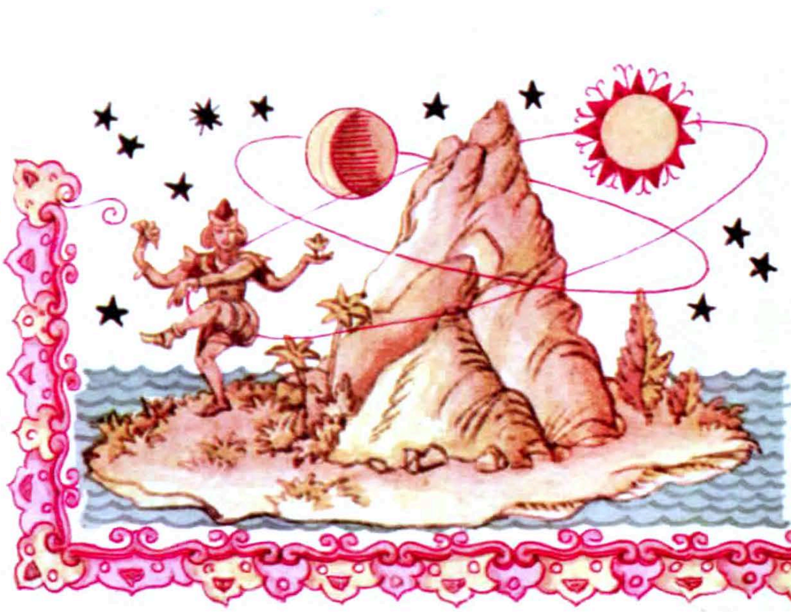
प्राचीन भारत को ऋषियों-मुनियों का देश अकारण ही नहीं कहा जाता था। उन पुराने दिनों में जब आस-पड़ोस के देशों में सभ्यता का जन्म ही हो रहा था, यहां, इस विशाल प्रायद्वीप पर, जो एक जिह्वा की भांति हिंद महासागर के नीले-हरे विस्तार में बढ़ गया है, अनेक विद्वान रहते थे। भारत में कई छोटे-छोटे जनपद थे। हर राजा के दरबार में विद्वान होते थे। सब लोग उनका बहुत आदर करते थे।

उनमें गणितज्ञ और खगोलविज्ञानी, चिकित्सक और दार्शनिक होते थे, जो अनबूझ प्रश्नों पर चिंतन-मनन करते थे। इन्हें महर्षि कहा जाता था।

तो ये महर्षि पृथ्वी की कल्पना किस रूप में करते थे?

इस बारे में कोई एक मत नहीं था। वैसे, अधिकांश महर्षि इस बात पर सहमत थे कि पृथ्वी सपाट है। चीनियों की "कटे-छंटे सिरोंवाली चपाती" जैसी सपाट तो नहीं, बल्कि विराटाकार चक्र जैसी। इस चक्र के केंद्र में मेरु पर्वत है। सूर्य-चंद्रमा और तारे मेरु पर्वत की परिक्रमा करते हैं। इसके आगे ऋषियों के बीच मतभेद शुरू हो जाते हैं।









कुछ का कहना था कि सारा थल चार महाद्वीपों में विभाजित है। उनमें एक दूसरे के बीच और उनके तथा मेरु पर्वत के बीच सागर है। प्रत्येक महाद्वीप का नाम उसके तट पर उगनेवाले विशाल वृक्षों में से एक के नाम पर है। केवल दक्षिणी महाद्वीप के तट पर ही मानव रहते हैं और इसका नाम जम्बूद्वीप, वहां पर उगनेवाले जम्बू वृक्ष पर ही रखा गया है।

दूसरे ऋषि उनसे सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि जम्बूद्वीप छल्ले जैसा है, जो मेरु पर्वत के शिखर के गिर्द स्थित है। लवण सागर इस महाद्वीप को अगले वलयरूपी महाद्वीप से अलग करता है, जिसके आगे लवण सागर नहीं, बल्कि मधु सागर है। इस प्रकार महर्षियों ने सृष्टि की अपनी कल्पना में सात वलयरूपी महाद्वीप गिनाये। इन सब के बीच में अलग-अलग सागर बताये। इक्षु (ईख-रस) सागर के बाद आता है सुरा सागर, फिर सर्पि (घृत) सागर, क्षीर सागर, दधि सागर और अंततः स्वदुद सागर... बताओ, इतने शानदार चित्र का कौन विरोध करेगा?

लेकिन पृथ्वी के इस रूप को भी सभी स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था कि पृथ्वी खिले हुए कमल के फूल जैसी है। उसकी सबसे बड़ी चार पंखुड़ियां – चार महाद्वीप हैं। पुष्प के पुंकेसर और गर्भकेसर वे पर्वत हैं, जो सिंधु





कुछ का कहना था कि सारा थल चार महाद्वीपों में विभाजित है। उनमें एक दूसरे के बीच और उनके तथा मेरु पर्वत के बीच सागर है। प्रत्येक महाद्वीप का नाम उसके तट पर उगनेवाले विशाल वृक्षों में से एक के नाम पर है। केवल दक्षिणी महाद्वीप के तट पर ही मानव रहते हैं और इसका नाम जम्बूद्वीप, वहां पर उगनेवाले जम्बू वृक्ष पर ही रखा गया है।

दूसरे ऋषि उनसे सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि जम्बूद्वीप छल्ले जैसा है, जो मेरु पर्वत के शिखर के गिर्द स्थित है। लवण सागर इस महाद्वीप को अगले वलयरूपी महाद्वीप से अलग करता है, जिसके आगे लवण सागर नहीं, बल्कि मधु सागर है। इस प्रकार महर्षियों ने सृष्टि की अपनी कल्पना में सात वलयरूपी महाद्वीप गिनाये। इन सब के बीच में अलग-अलग सागर बताये। इक्षु (ईख-रस) सागर के बाद आता है सुरा सागर, फिर सर्पि (घृत) सागर, क्षीर सागर, दधि सागर और अंततः स्वदुद सागर... बताओ, इतने शानदार चित्र का कौन विरोध करेगा?

लेकिन पृथ्वी के इस रूप को भी सभी स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था कि पृथ्वी खिले हुए कमल के फूल जैसी है। उसकी सबसे बड़ी चार पंखुड़ियां – चार महाद्वीप हैं। पुष्प के पुंकेसर और गर्भकेसर वे पर्वत हैं, जो सिंधु





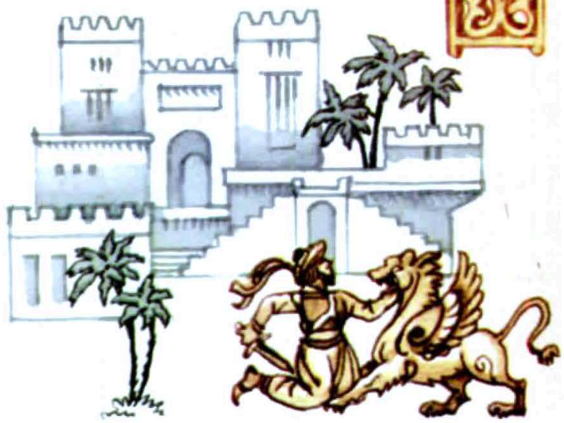
और गंगा के मैदानों को घेरे हैं। यह कमल पुष्प निस्सीम सागर में उगा हुआ है और इसका डंठल सागर के तले में दबा हुआ है।

लेकिन इस रूप से भी सभी ऋषि सहमत नहीं थे। जो इससे असहमत थे, वे पृथ्वी का अपना दृश्य प्रस्तुत करते थे। उनका कहना था कि क्षीर सागर में भीमकाय कछुआ तैरता है। उसके कवच से अधिक मज़बूत और क्या चीज़ हो सकती है? कछुए की पीठ पर चार हाथी खड़े हैं। हाथी से बढ़कर शक्तिशाली और कौन हो सकता है? हाथी चारों दिशाओं में सिर किये और सूंड ऊपर उठाये खड़े हैं। उनकी मज़बूत पीठों पर गोल और चपटी पृथ्वी टिकी हुई है।

प्राचीन भारत के ऋषियों-मुनियों ने आश्चर्यजनक रूपों की कल्पना की थी!



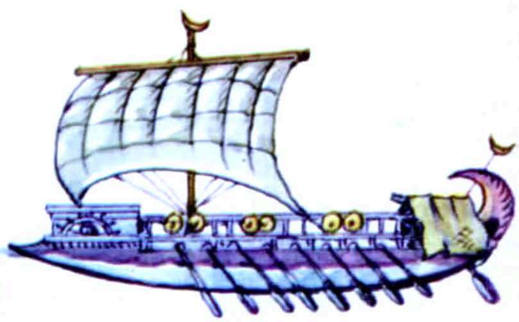




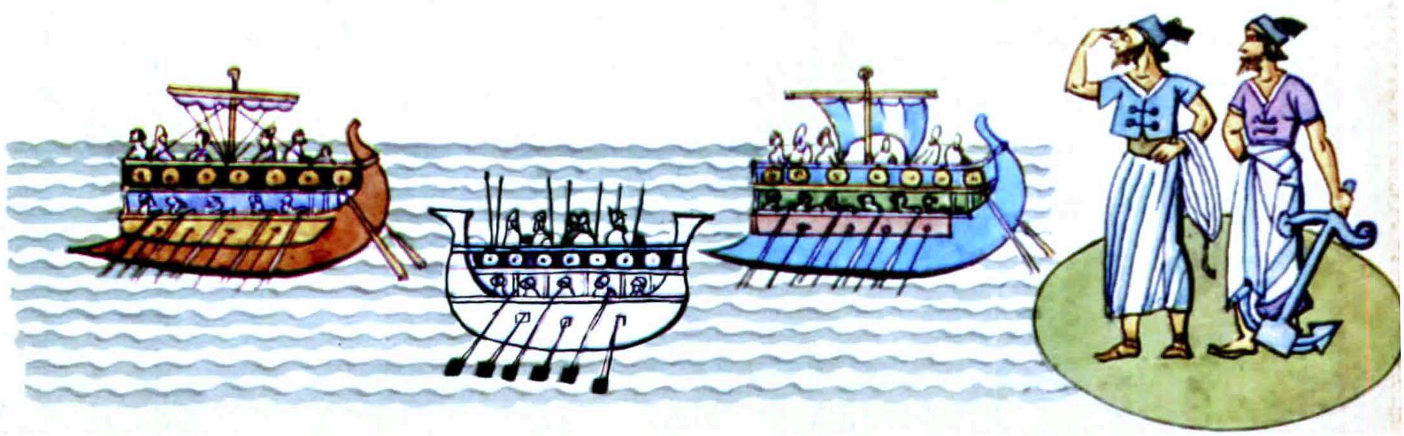
फ़ोयेनिशियन लोग विचित्र थे और रहते भी वे एक विचित्र देश में थे। सही-सही कहा जाये तो फ़ोयेनिशिया जैसा कोई देश था ही नहीं। यह नाम तो प्राचीन यूनानियों ने भूमध्यसागर और ऊंची पर्वत शृंखला के बीच फैली ज़मीन की पट्टी का रखा था। अब यहां लेबनान राज्य है। कई स्थानों पर पहाड़ कटे-छंटे सागर तट तक चले आये हैं और इस तरह ज़मीन की यह पट्टी कई छोटे-छोटे हिस्सों में बंटी हुई है। पहाड़ी नदियां इस ज़मीन को सींचती हैं और इसे उपजाऊ बनाती हैं। लेकिन ज़मीन थोड़ी ही है। प्राचीन युग से ही यहां एक दूसरी से सटी बस्तियां बनती आयी हैं। शनैः-शनैः ये मिलकर नगर का रूप धारण कर लेती थीं और प्रत्येक नगर एक अलग राज्य होता था। फ़ोयेनिशियन नगर अपनी सुविधाजनक भौगोलिक स्थिति का लाभ उठाते थे। यहां से कारवां दजला और फ़रात के दोआब को, नील नदी के मैदानों को जाते थे, भूमध्य-सागर के तटों पर स्थित सभी देशों को जहाज़ यहां से जाते थे।



सदियां बीतती जातीं, फ़ोयेनिशिया में नये-नये बंदरगाह बनते जाते और व्यापारियों की बस्तियां भी। इनमें से कुछ सशक्त और स्वतंत्र राज्य बन जाते, जैसे कि कार्थेज।



फ़ोयेनिशिया के रंगसाज़ बेजोड़ नीललोहित रंग बनाते थे, जिससे ऊन रंगा जाता था और इस ऊन से बड़े-बड़े धनी और अभिजात लोगों के लिए ही वस्त्र बनते थे। यहां पर

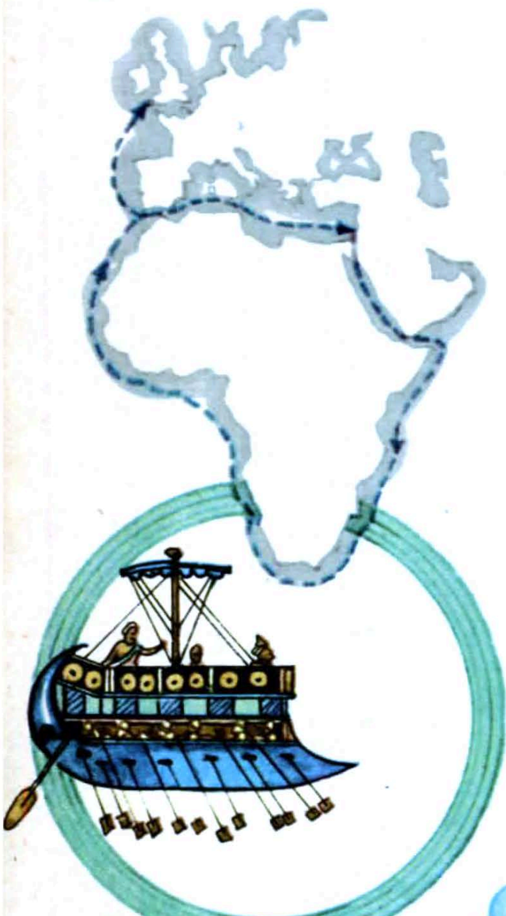




ही लोहा गलाया और ढाला जाता था, कांच के बर्तन और आभूषण बनते थे। जहाज़ बनाने में तो फ़ोयेनिशियनों का कोई सानी ही नहीं था! देवदार के बड़े-बड़े पेड़ों से जहाज़ का चौड़ा पेटा बनाया जाता था, उस पर पटरे लगाते थे, ताकि प्रचंड लहरें भी जहाज़ का कुछ न बिगाड़ सकें, खेवैये बचे रहें। डांड़ों के साथ-साथ ऊंचे मस्तूलों पर पाल भी लगाये जाते थे। ऐसे एक जहाज़ पर तीस तक खेवैये होते थे। साहसी जहाज़ी न देवों से डरते थे, न दैवों से, न आंधी से, न तूफ़ान से। फ़ोयेनिशियन कर्णधार भूमध्यसागर में सारे रास्ते जानते थे। इससे आगे भी वे जाते थे।

सातवीं सदी ई० पू० में मिस्र के फ़राऊन नेहो द्वितीय ने फ़ोयेनिशियन जहाज़ों को अफ़्रीका के किनारे-किनारे जाने का आदेश दिया था। उन्हें तब तक आगे बढ़ते जाना था, जब तक कि कोई अलंघ्य बाधा उन्हें वापस लौटने पर विवश न कर दे। यह यात्रा पूरे तीन साल चली। निडर जहाज़ी महाद्वीप का चक्कर काटकर दूसरी ओर से स्वदेश लौटे।

लंबी यात्रा से लौटते हुए सभी जहाज़ी बड़ी अधीरता से यह देखते हैं कि कब अपने देश का तट नज़र आयेगा।

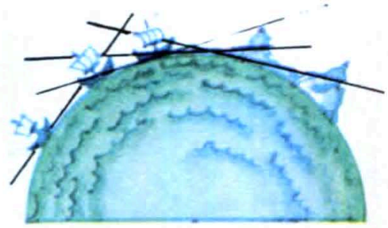




फ़ोयेनिशियन जहाज़ी भी इस क्षण का इंतज़ार करते थे। उन्होंने इस बात की ओर ध्यान दिया कि समुद्र में से सबसे पहले पहाड़ों की चोटियां नज़र आती हैं। जब जहाज़ और पास पहुंचता है तो कम ऊंचे पहाड़ दिखाई देने लगते, और भी पास पहुंचने पर आखिर नगर के भवन डोल्फ़िनों की भांति समुद्र में से उभर आते हैं।

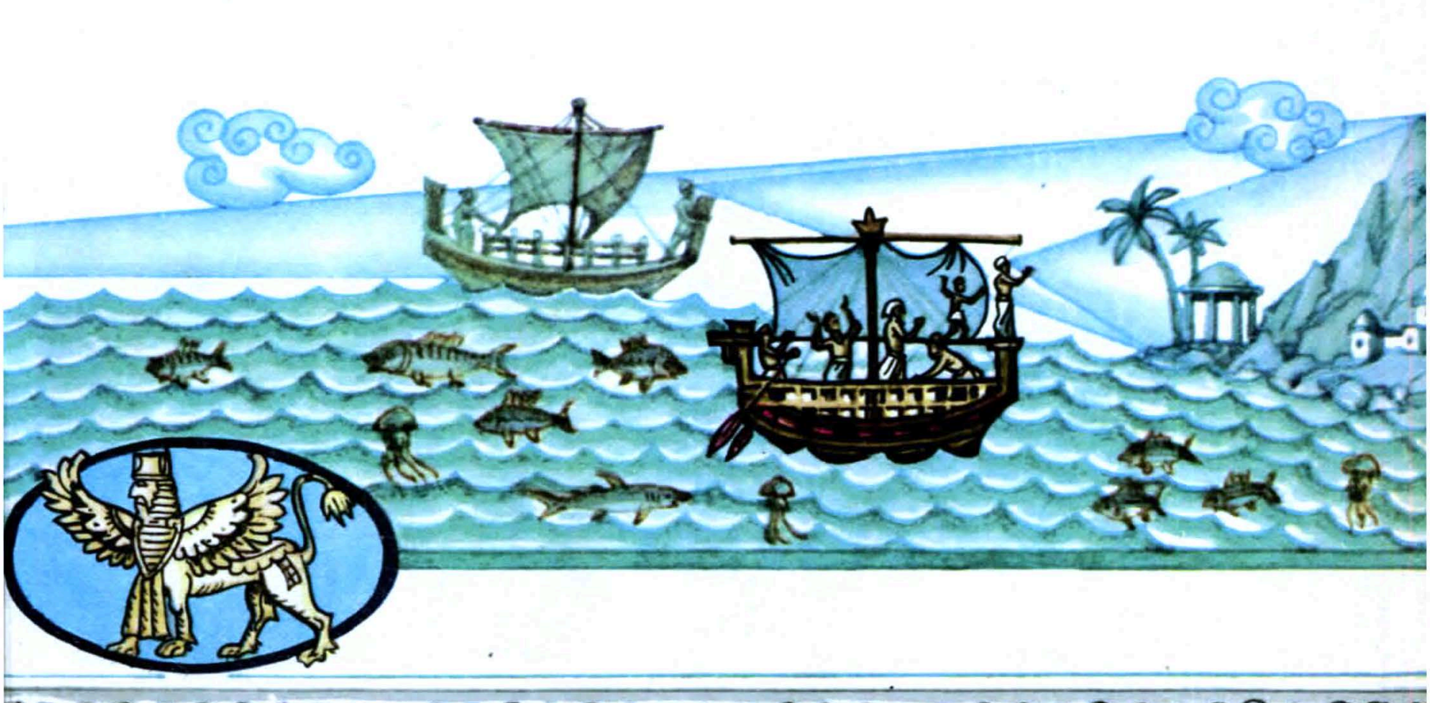


"ऐसा क्यों है?" जहाज़ी अचरज में पड़ जाते। "अगर पृथ्वी सपाट है तो उसपर सब कुछ एकसाथ दिखाई देना चाहिए? कहीं यह बात गलत तो नहीं कि पृथ्वी रोटी जैसी सपाट है? वह तो आधे सेब जैसी लगती है। अगर हम यह कल्पना करें कि पृथ्वी उभरी हुई है, तब यह समझ में आ जाता है कि समुद्र में से पहाड़ों की चोटियां ही क्यों पहले नज़र आती हैं, और यह भी कि मस्तूल के ऊपर चढ़कर अधिक दूर तक क्यों देखा जा सकता है..."



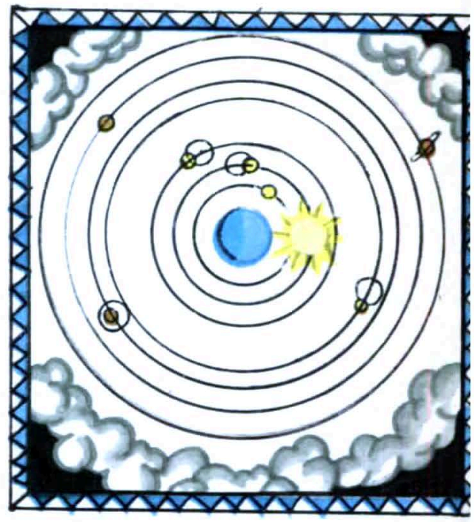
यों फ़ोयेनिशियन जहाज़ियों ने यही मान लिया कि पृथ्वी उभारदार है। आधे सेब या नारंगी जैसी, जिसे पानी से भरी तश्तरी में रखा गया है। यह पानी समुद्र है और तश्तरी के सिरों पर पलटी हुई बड़ी नीली रकाबी यानी आकाश टिका हुआ है।

अजीब नमूना है न पृथ्वी का?





सबसे पहले किसने यह सोचा कि पृथ्वी गोल है?



अब शायद ही कोई इस प्रश्न का सही-सही उत्तर दे सके। उन पुराने दिनों में हर विकसित राज्य में अपने-अपने विद्वान होते थे और उनमें बहुतों के मस्तिष्क में अलग-अलग कारणों से यह विचार आया होगा। उदाहरण के लिए, प्राचीन यूनानी चिंतक पाइथागोरस का कहना था कि गोला सबसे सुंदर ज्यामितीय आकृति है। सो, यदि पृथ्वी ब्रह्मांड का केंद्र है तो उसका रूप और क्या हो सकता है? बहुत से विद्वान पाइथागोरस की इस बात से सहमत थे। लेकिन इसे सिद्ध कैसे किया जाये? कैसे यह बताया और उदाहरण देकर दिखाया जाये ताकि किसी के मन में कोई संशय न रहे? प्राचीन यूनानी दार्शनिक अरस्तू ऐसा करने में सफल रहे। अरस्तू बहुत ज्ञानी थे। वह अनेक विषयों में पारंगत थे। विख्यात सेनापति सिकंदर महान के गुरु थे। उन्होंने एथेंस में सारे प्राचीन जगत में प्रसिद्ध दर्शन-विद्यालय खोला था। अरस्तू की ख्याति इतनी थी कि तुरंत ही अनेक शिष्य वहां विद्या पाने चले आये। सिकंदर ने, महान सेनापति बन चुकने पर भी कभी अपने गुरु को नहीं भुलाया। दूर-दूर के देशों से वह उन्हें पत्र भेजता था और वहां मिलनेवाली विचित्र वस्तुएं भी।





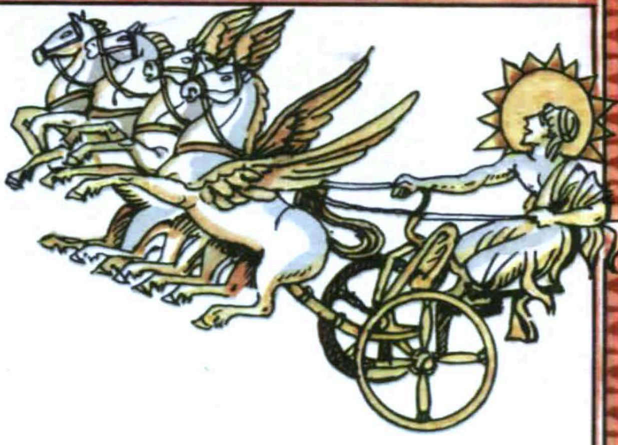


हर सच्चे विद्वान की भांति अरस्तू की ज्ञान-पिपासा भी अनबुझ थी, वह सदा अधिक, और अधिक जानना चाहते थे। ज्ञान तो ऐसी सम्पदा है, जिसे संचित करना किसी के लिए भी शर्मनाक नहीं है!



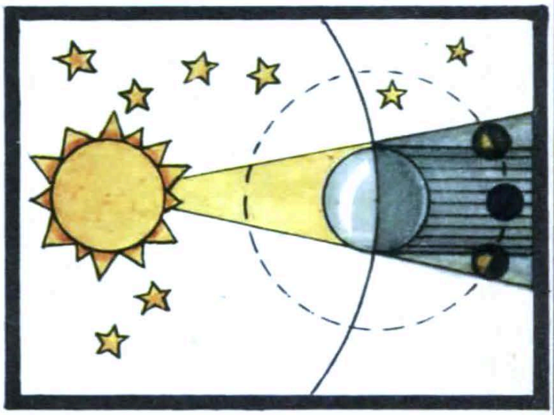
उन दिनों मनुष्य जिन अनेक प्राकृतिक परिघटनाओं का रहस्य नहीं बूझ पाया था, उनमें एक चंद्र-ग्रहणों का रहस्य भी था। चंद्र-ग्रहण क्यों होते हैं? यह कोई नहीं समझ पाता था। कुछ लोगों का खयाल था कि दुष्ट दैत्य आकाश से चंद्रमा को चुराने की कोशिश करते हैं ताकि लोग उसकी रजत ज्योत्स्ना न पा सकें। कुछ दूसरे लोगों का यह विश्वास था कि चंद्र-ग्रहण किसी भयानक विपत्ति का अग्रदूत होता है: शायद युद्ध का और उसके साथ अकाल व भुखमरी का। कुछ लोग ऐसी भी गप्पें हांकते थे कि ग्रहण के समय हवा दूषित हो जाती है और लोग दम घुटने से


अरस्तू



मर जाते हैं। कान के कच्चे लोग ऐसे धोखे में आ जाते थे, गहरे तहखानों में जा छिपते थे, दरारें, खिड़कियां बंद कर लेते थे।

अरस्तू कायर नहीं थे। उन्होंने अनेक बार चंद्र-ग्रहण देखा और उनका कुछ नहीं बिगड़ा। अपने प्रेक्षणों से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि चंद्रमा के पहलू पर प्रकट होनेवाला काला धब्बा पृथ्वी की छाया ही है, जो पृथ्वी के सूर्य और चंद्रमा के बीच आ जाने पर चंद्रमा पर पड़ती है। लेकिन यह छाया सदा गोल क्यों होती है?



अरस्तू एक चपाती लेकर धूप में आये। चपाती से एक स्थिति में गोल छाया पड़ती और दूसरी स्थिति में टहनी जैसी पतली। इसका मतलब यह हुआ कि पृथ्वी सपाट चपाती जैसी नहीं हो सकती।

तब उन्होंने आधी नारंगी काटकर उसे भी सूरज के आगे रखा। आधी नारंगी की छाया तभी गोल होती, जबकि सूरज की किरणें कटे हुए भाग पर या उभारदार "पीठ" पर पड़तीं। लेकिन आधी नारंगी की बगल सूरज की ओर करते ही उसकी छाया अधूरे वृत्त के रूप में होती...



पूरी नारंगी या पूरे सेब की ही, उन्हें चाहे जैसे भी घुमाओ, छाया सदा गोल पड़ती है।

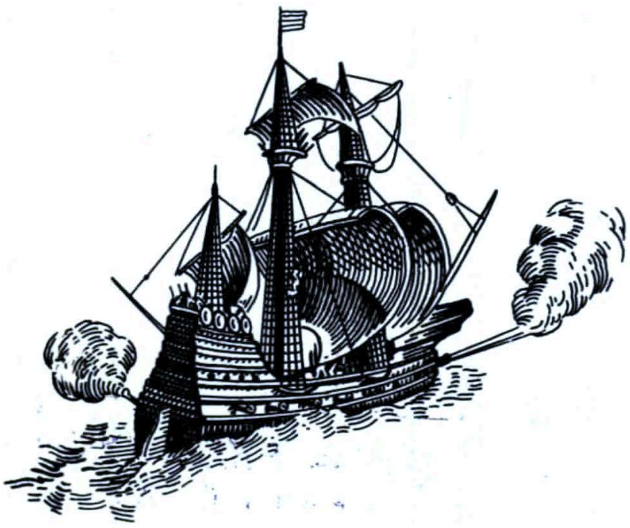
"इसका अर्थ है कि हमारी पृथ्वी भी एक गोला है!" अरस्तू ने अपने शिष्यों से कहा और



उन्हें यह दिखाया कि वह कैसे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। शिष्य आंखें फाड़-फाड़कर अपने गुरु को देख रहे थे, उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बस एक ही बात समझ में नहीं आ रही थी – लोग पृथ्वी के निचले गोलार्ध पर कैसे रहते हैं? वे सिर नीचे करके कैसे चलते हैं और गिरते क्यों नहीं?

इस प्रश्न का तो कोई उत्तर अरस्तू भी नहीं सोच पाये। तब यह तो किसी को नहीं पता था न कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति न केवल लोगों को, बल्कि पर्वतों, भवनों, नदियों और सागरों और हवा तक को धरातल पर बनाये रखती है।

अरस्तू को भी यह नहीं पता था। इसलिए स्वयं उन्होंने , उनके शिष्यों और अनुयायियों ने यह मान लिया कि दक्षिणी गोलार्ध पर कोई नहीं रहता। वैसे कुछ विद्वानों का यह मत था कि वहां "उलटे लोग" रहते हैं।



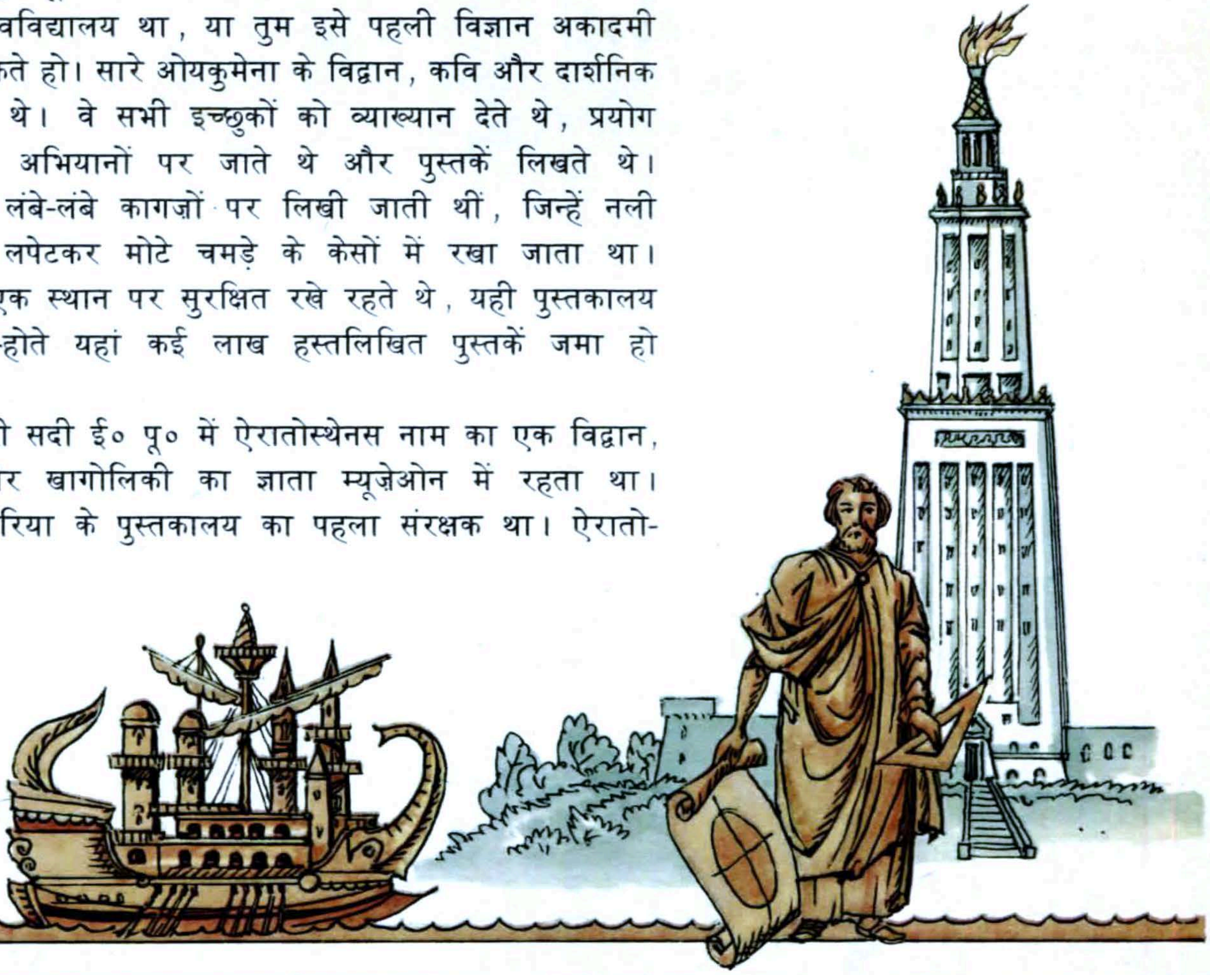
अध्याय तीन



सिकंदरिया

सिकंदर महान ने अपने सैनिकों के साथ आधी दुनिया का चक्कर लगाया। मिस्र में उसने नील नदी की एक शाखा के तट पर, व्यापार मार्गों के चौराहे पर नगर बसाने का आदेश दिया। इसका नाम सिकंदरिया रखा गया। समय बीतता गया। लोगों को यह स्थान पसंद आया। यहां बसने के इच्छुकों की कोई कमी न थी। नगर बड़ा ही बड़ा होता जा रहा था। बाहर से आनेवाले चकित होकर इसकी खुली सड़कें और कच्ची ईंट के बहुमंज़िले मकान देखते थे। लेकिन सिकंदरिया का सच्चा चमत्कार थे म्यूज़ेओन और पुस्तकालय। म्यूज़ेओन का अर्थ है म्यूज़ यानी कलादेवी का आलय। वास्तव में यह पहला विश्वविद्यालय था, या तुम इसे पहली विज्ञान अकादमी भी कह सकते हो। सारे ओयकुमेना के विद्वान, कवि और दार्शनिक यहां रहते थे। वे सभी इच्छुकों को व्याख्यान देते थे, प्रयोग करते थे, अभियानों पर जाते थे और पुस्तकें लिखते थे। ये पुस्तकें लंबे-लंबे कागज़ों पर लिखी जाती थीं, जिन्हें नली की तरह लपेटकर मोटे चमड़े के केसों में रखा जाता था। ऐसे केस एक स्थान पर सुरक्षित रखे रहते थे, यही पुस्तकालय था। होते-होते यहां कई लाख हस्तलिखित पुस्तकें जमा हो गईं।

तीसरी सदी ई० पू० में ऐरातोस्थेनस नाम का एक विद्वान, भूगोल और खागोलिकी का ज्ञाता म्यूज़ेओन में रहता था। वह सिकंदरिया के पुस्तकालय का पहला संरक्षक था। ऐरातो-





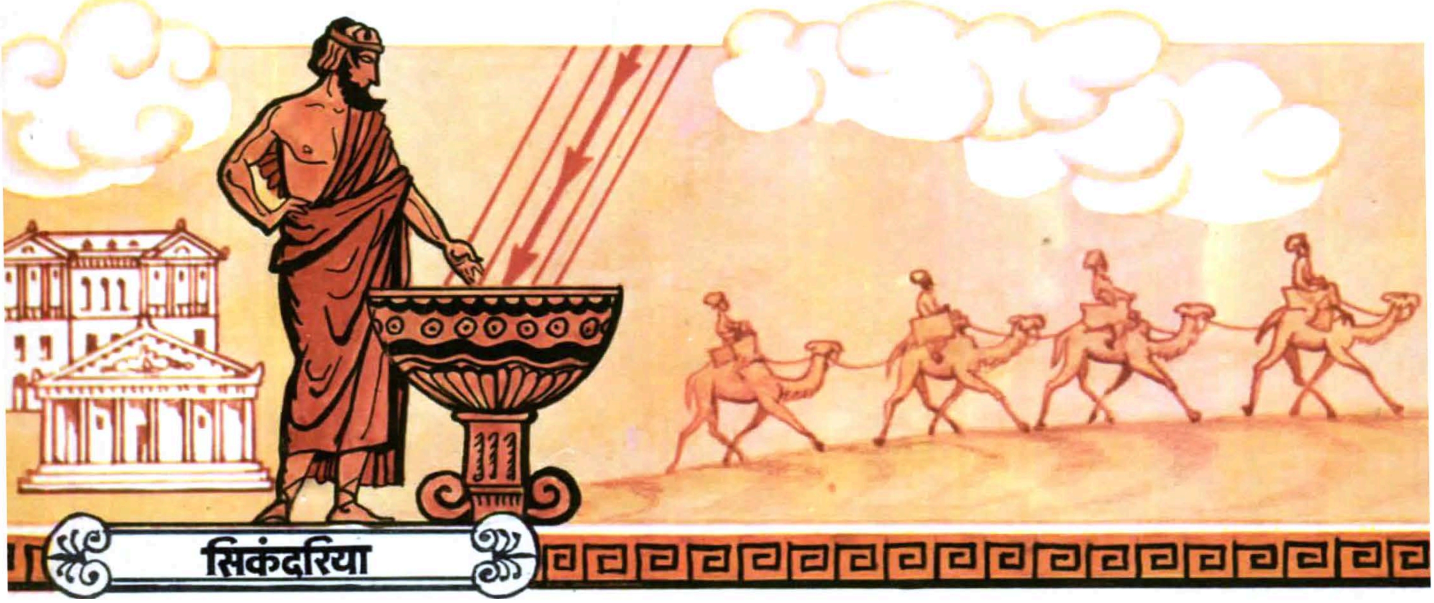
स्थेनस इस बात के लिए जाना जाता है कि उन दिनों भूमध्य-सागर तट के लोगों को ज्ञात सभी देशों का विवरण लिखने के साथ-साथ उसने पृथ्वी का आकार पता लगाया। इसकी कहानी यह है ...

सियेना नगर से आनेवाले सौदागरों से उसे पता चला कि ग्रीष्म विषुव के दिन दोपहर के समय सूरज की किरणों से नगर के सबसे गहरे कुएं का पानी चमकता है। इसका मतलब था कि किरणें एकदम सीधी पड़ती हैं। ऐरातोस्थेनस को पता था कि सियेना से सिकंदरिया तक दक्षिण से उत्तर को पांच हज़ार स्तादिया (१ स्तादिया=१८५,२५ मीटर) का फ़ासला है। यह दूरी कारवां ले जानेवालों ने नापी थी। लेकिन सिकंदरिया में उसी दिन सूरज की किरणें सीधी नहीं, बल्कि तिरछी पड़ती थीं। और उनके झुकाव का कोण एक पूरे वृत्त में निहित कोणों का पचासवां अंश था। सो, विद्वान के लिए यह स्पष्ट हो गया कि इन दोनों नगरों के बीच की दूरी पृथ्वी की परिधि के पचासवें भाग के बराबर है। पांच हज़ार स्तादिया को पचास से गुणा करके पता चला पृथ्वी की परिधि ढाई लाख स्तादिया, अर्थात ४२-४३ हज़ार किलो-मीटर।



अब यदि मैं तुम्हें बताऊं कि आधुनिक वैज्ञानिकों ने उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों से होकर खींची गयी देशांतर रेखा यानी पृथ्वी की परिधि की जो गणना की है वह ३९,९४० किलोमीटर है, तो ऐरातोस्थेनस की गलती कोई बहुत अधिक नहीं निकलती।

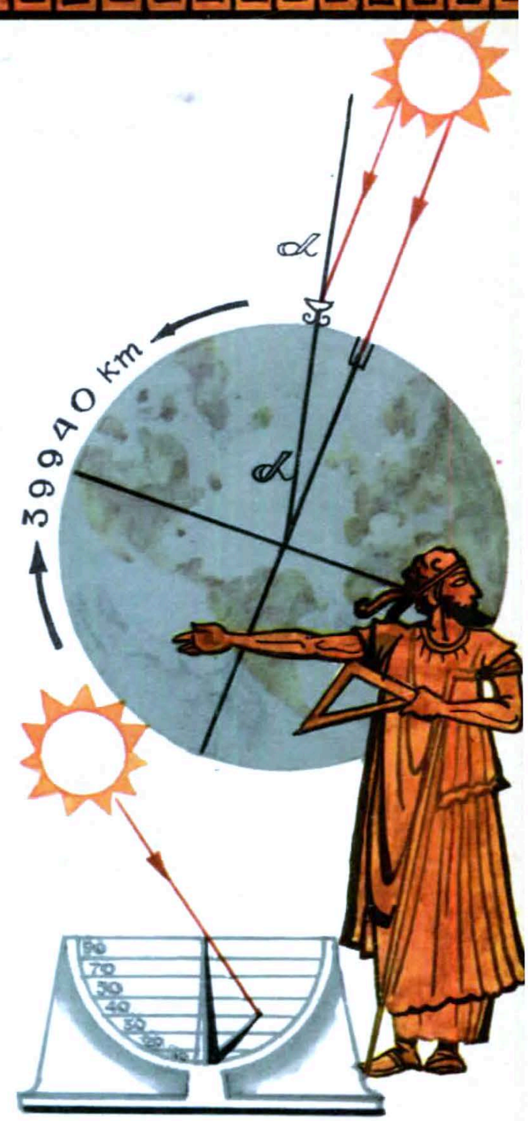
ऐरातोस्थेनस की रचनाओं में से बहुत थोड़ी सी ही बची



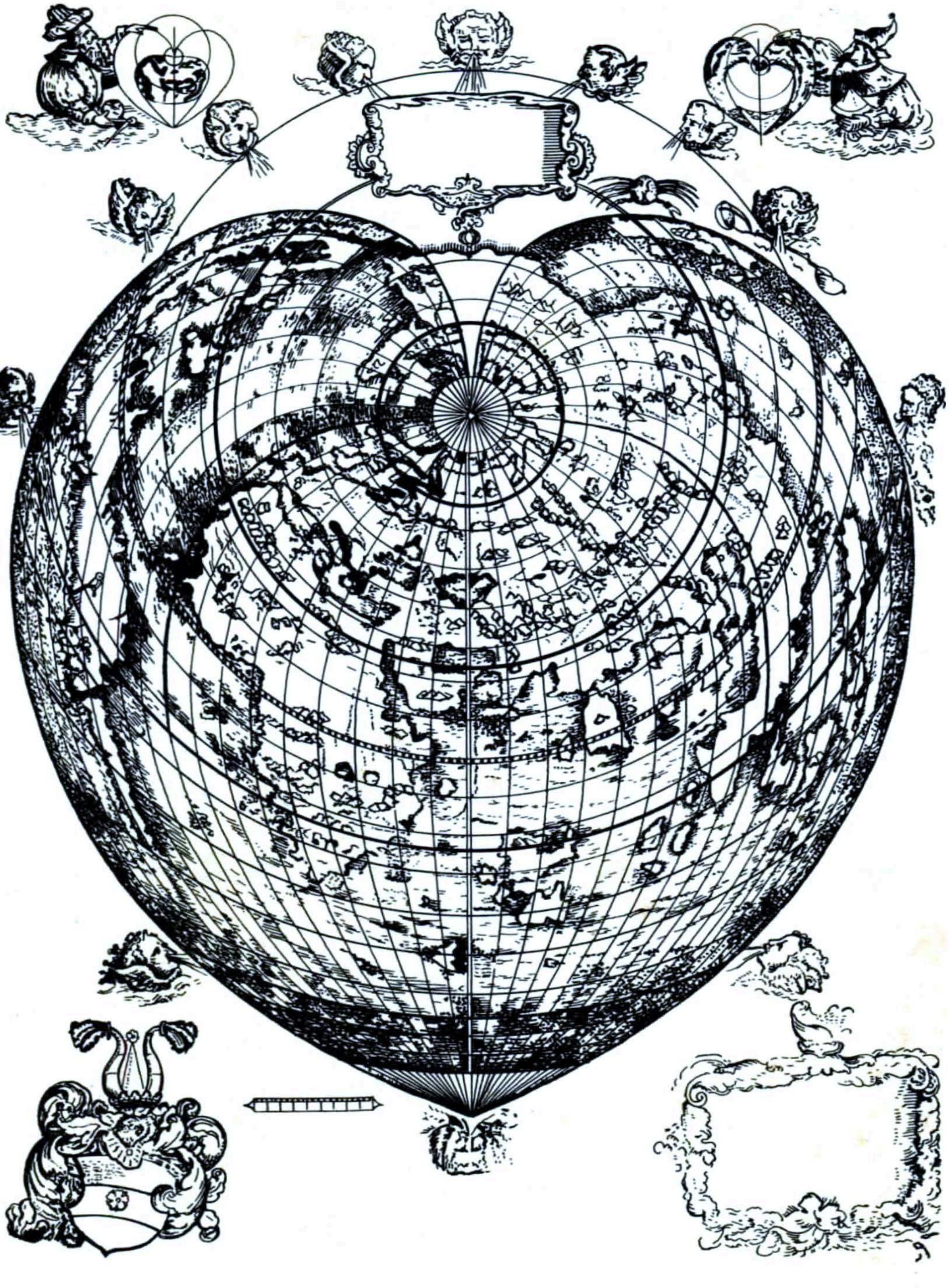
रही हैं। उसके काम के बारे में हमें कालांतर में हुए विद्वानों की कृतियों से ही अधिक पता चलता है। उन्होंने लिखा है कि इस विद्वान ने "गेओग्राफ़िका" नामक एक पुस्तक लिखी थी। प्राचीन यूनानी भाषा में "गेओग्राफ़िका" का अर्थ है "भूमिवर्णन"। यह तो तुम समझ ही गये होगे कि इसी विषय को अब भूगोल कहा जाता है। ऐरातोस्थेनस ने अपनी पुस्तक को तीन भागों में बांटा। पहले भाग में उन्होंने भूगोल का इतिहास दिया। दूसरे में गणितीय भूगोल के मूलभूत नियम समझाये। तीसरे भाग में नवीनतम जानकारी के अनुसार थल का विवरण दिया।

सभी प्राचीन यूनानी विद्वानों की ही भांति ऐरातोस्थेनस भी भूमध्यसागर के पास फैले ओयकुमेना की ओर ही मुख्यतः ध्यान देता था। वह उसे एक बड़ा द्वीप मानता था, जो महासागर से घिरा है और पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में समोष्ण जलवायुवाले भाग में स्थित है। उन दिनों सभी यूनानी विद्वानों का यह मत था कि उष्ण कटिबंध में भयानक गर्मी के कारण वह निर्जन है। दक्षिणी गोलार्ध के समोष्ण कटिबंध के बारे में उनका कहना था कि शायद वहां कोई अज्ञात देश हो, जहां "उलटे लोग" रहते हों।

उनकी कल्पना में उनके इस "थल-द्वीप" की रूप-रेखा यूनानी पुरुषों के उस लबादे जैसी थी, जो अलग-अलग रंगों के आयताकार टुकड़ों से बनाया जाता था। ये विद्वान थल को तीन भागों में बांटते थे – यूरोप, एशिया और लीबिया। बहुत बाद में रोमनों ने लीबिया का नाम अफ़्रीका कर दिया, यहां बसी एक शक्तिशाली जन-जाति "अफ़्रीगी" के नाम पर।







टोलेमी का एक मानचित्र। यह माना जाता है कि उसने ही सबसे
पहले सारे मानचित्र पर समानांतर और देशांतर रेखाएं खींचीं।

ओयकुमेना के अलग-अलग भागों की यात्रा करते समय जहाज़ी अपनी दिक-स्थिति का, रास्ते का पता कैसे लगाते थे? प्रत्यक्षत: लोगों को अलग-अलग स्थानों के बीच की दूरी ज्ञात थी और वे एक दूसरे को बताते थे कि वहां तक इतने स्तादिया का फ़ासला है, या इतने दिनों का रास्ता है। दिशा और सही रास्ता चुनना अधिक आसान बनाने के लिए यूनानी भूगोल-वेत्ताओं ने यात्रियों को ज्ञात स्थानों को जोड़ती रेखाएं खींचीं। ऐसी एक रेखा, जिसे डायाफ़ाग्म, यानी मध्य रेखा कहा जाता था, हर्क्युलिस के स्तंभ (जिब्राल्टर जलडमरूमध्य) से शुरू होती थी, फिर भूमध्यसागर में मेसिन जलडमरूमध्य और पेलोपोनेसस के दक्षिणी सिरे से होती हुई रोड्ज़ (रोडोस) द्वीप तक और उससे आगे एशिया माइनर पर्वतमाला के दक्षिणी छोर के साथ-साथ जाती थी। यह "डायाफ़ाग्म" रेखा भूमध्यरेखा के समानांतर थी और ओयकुमेना को दो भागों में बांटती थी। "डायाफ़ाग्म" को एक दूसरी रेखा काटती थी, जो दक्षिण में मेरोए राज्य (अब यह स्थान सुडान में है) से शुरू होकर नील नदी के मैदान से होती हुई सिकंदरिया तक फिर रोड्ज़ द्वीप और बैज़ंतिया से आगे बोरीसफ़ेन नदी, जिसे अब द्नेप्र कहते हैं, के मुहाने तक जाती थी। इन रेखाओं की बदौलत मानचित्र बनाना अधिक आसान हो गया।

बाद में इन दो रेखाओं के समानांतर दूसरी रेखाएं भी जोड़ी जाने लगीं, जो प्राचीन जगत के महत्वपूर्ण स्थानों से गुज़रती थीं। प्राय: दूसरी सदी ई० में प्रसिद्ध गणितज्ञ, खगोलविज्ञानी और भूगोलवेत्ता क्लाउडियस टोलेमी ने सारे मानचित्र पर समानांतर और देशांतर रेखाएं खींचीं। समानांतर रेखाएं भूमध्यरेखा के समानांतर थीं और देशांतर रेखाएं उत्तरी ध्रुव से शुरू होकर इन रेखाओं को काटती थीं। टोलेमी प्राचीन विद्वानों के इस मत से सहमत नहीं था कि थल एक द्वीप है। वह फ़ोयेनिशियन जहाज़ियों की बातों पर विश्वास नहीं करता था और यह मानता था कि किसी को यह ठीक-ठीक पता नहीं है कि उत्तर या दक्षिण में कहीं थल का कोई छोर है या नहीं। इसलिए टोलेमी ने पृथ्वी का अपना मानचित्र बनाते हुए थल को अंत तक बढ़ा दिया और लिख दिया कि वहां "अज्ञात देश" है।

वह तो यह सुनना भी नहीं चाहता था कि एशिया के उत्तर और पूरब में समुद्र हैं और "इथियोपिया" (यानी, अफ़्रीका) के दक्षिण में महासागर है। उसके वर्णनों के अनुसार वैज्ञा-निकों ने संसार का मानचित्र बनाकर देखा है। इसमें हिंद महासागर चारों ओर थल से घिर गया है और दक्षिण-पूर्वी एशिया किसी अज्ञात थल के रास्ते पूर्वी अफ़्रीका से जुड़ गया है।

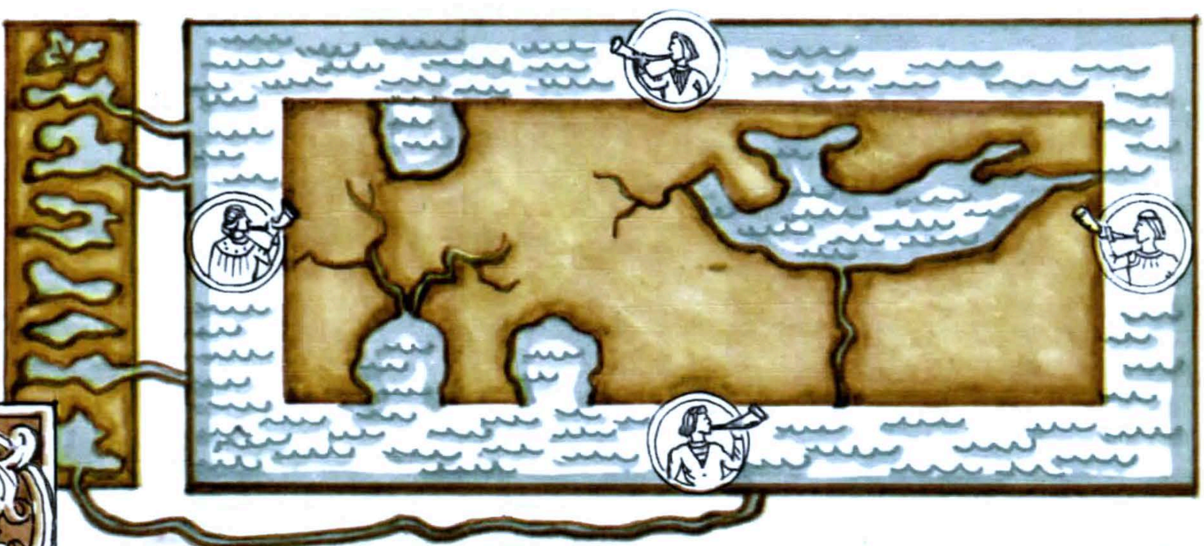
किसकी बात सही है? यदि ऐरातोस्थेनस की तो यात्री जहाज़ों पर संसार के दूर से दूर स्थित देश तक पहुंच सकते हैं। और यदि टोलेमी की तो उनके जहाज़ों को थल से घिरे समुद्र में ही रहना पड़ेगा और लंबी यात्राएं थल पर ही करनी चाहिए।

टोलेमी को प्राचीन यूनानी विज्ञान का अंतिम मेधावी प्रतिनिधि माना जाता है। वह उस युग में हुआ जब प्राचीन यूनानी संस्कृति का ह्रास हो रहा था। उन दिनों ईसाई धर्म बड़े ज़ोरों से फैल रहा था। एक बार फिर यूरोप और एशिया में इस विचार ने जड़ पकड़ी कि पृथ्वी सपाट है। बेशक, हमारे ग्रह का सच्चा रूप जानने के पथ पर यह पीछे हटाया गया कदम था।



मेरे घर पर अल्मारी में एक बहुत बड़ी पुस्तक रखी हुई है। यह प्राचीन स्लाव भाषा में हाथ से लिखी हुई है। इसका नाम है : "पुस्तक ईसा मसीह की, चहुं ओर व्याप्त संसार के वर्णन सहित"। छठी सदी ई० में एक यूनानी व्यापारी ने यह पुस्तक लिखी थी। उसका नाम था कोस्मा इंदिकोपोलिउस। इंदिकोपोलिउस कहलाना तब बड़े सम्मान की बात थी, क्योंकि इसका अर्थ था कि यह व्यक्ति "इंदिका" यानी भारत की यात्रा कर आया है।

कोस्मा ने सचमुच ही अपने व्यापार के सिलसिले में लंबी-लंबी यात्राएं की थीं। वृद्धावस्था में वह मठवासी हो गया और मठ में ही उसने यह पुस्तक लिखी, जिसमें संसार के देश-विदेश का वर्णन किया। इस मठवासी-व्यापारी-यात्री ने बाइबिल को ही अपने वर्णन का आधार बनाया। बाइबिल का अनुसरण करते हुए उसने लिखा कि पृथ्वी सपाट और चौकोर है। इस



चौकोर पृथ्वी के चारों ओर महासागर हिलोरें लेता है। यह महासागर ऊंची दीवारों में बंद है, इन दीवारों पर आकाश का ठोस, पारदर्शी गुम्बद टिका हुआ है, जिस पर देवदूत तारों को चलाते हैं।

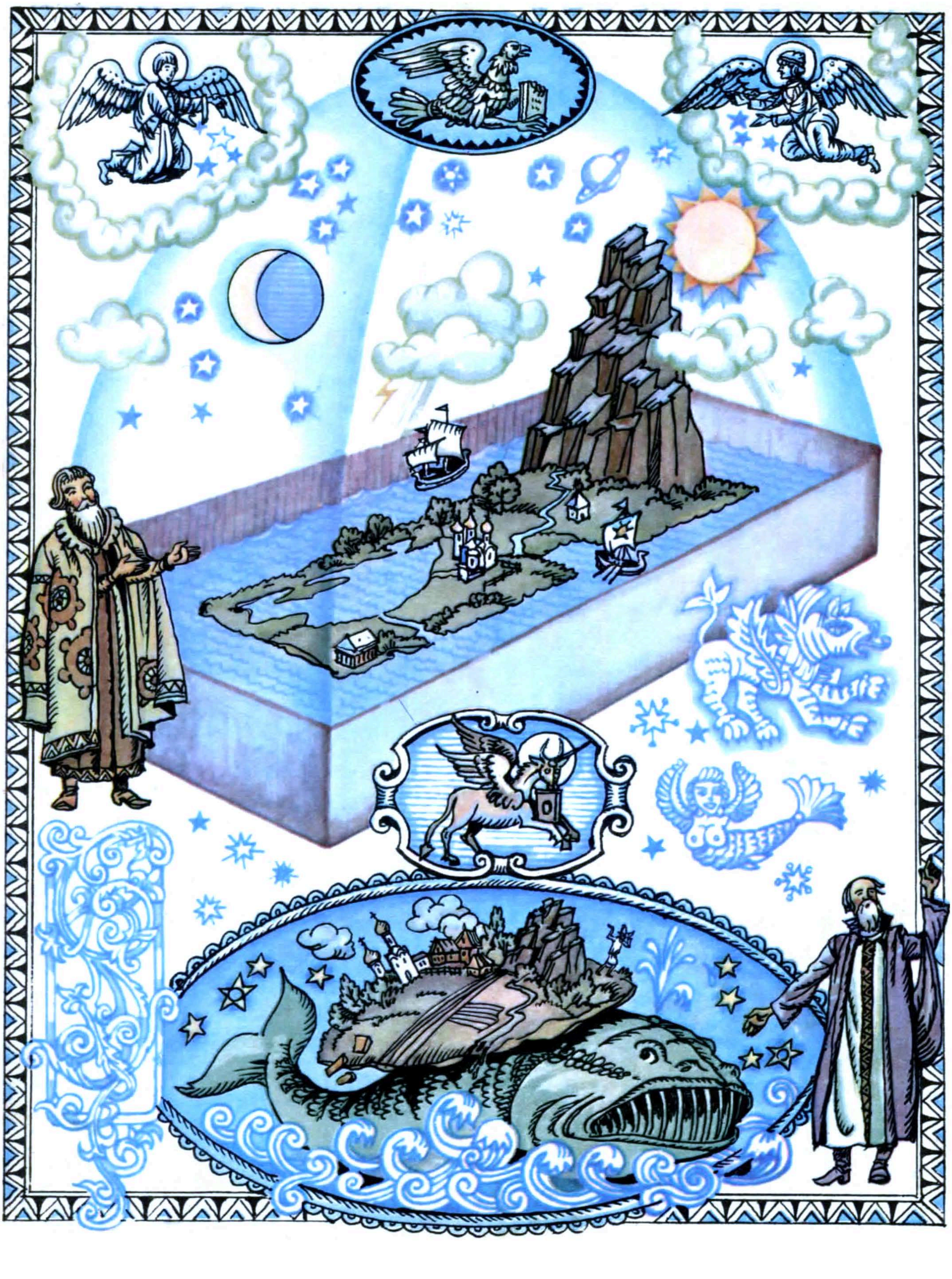
कोस्मा के अनुसार इस ठोस आकाश के पार "आकाश का जल" है, जो समय-समय पर वर्षा के रूप में गिरता है। उत्तर में कोस्मा ने एक ऊंचा पहाड़ बताया और कहा कि सूरज दिन भर का चक्कर लगाकर इसी पहाड़ के पीछे छिपता है और तब सारी धरती पर रात हो जाती है।

इस पुस्तक में बहुत से चित्र हैं। कुछ चित्र तो इस पुस्तक की रूसी में नकल करनेवालों ने मूल यूनानी पुस्तक से लिये थे और कुछ अपनी तरफ़ से जोड़ दिये थे। देश-विदेश का वर्णन करते हुए कोस्मा ने जो कुछ देखा और जो कुछ सुना उस सब के बारे में लिखा। यही कारण है कि पुस्तक में ऊंट, बैल, हाथी जैसे जीवों के साथ-साथ "वराहहाथी", "नकसींगा" और "एकशृंगी" जैसे काल्पनिक जीवों के चित्र भी हैं।

यह कहना कठिन है कि यूनानी भाषा से रूसी भाषा में इस पुस्तक का अनुवाद कब हुआ और किसने किया। हां, बात यह बहुत पुरानी है। सभी देशों में लोगों को यात्राओं की कथाएं पढ़ने या सुनने का शौक था। रूस के पढ़ाकुओं को सिकंदरिया के व्यापारी कोस्मा की पुस्तक अच्छी लगती थी। तुम पूछोगे: "इसमें तो इतनी कपोल-कल्पनाएं हैं – फिर भला यह उनको कैसे अच्छी लगती थी?" लेकिन पहली बात यह है कि तब लोगों को यह सब पता नहीं था, वे सब बातों पर विश्वास करते थे। दूसरे, उसकी कहानियां पढ़कर स्वयं भी दूर देशों की यात्रा करने की इच्छा होती थी...

प्राचीन रूस में दूर देशों का वर्णन करनेवाली और पृथ्वी के रूप-आकार के बारे में बतानेवाली बहुत सी पुस्तकें थीं। एक का नाम था "गूढ़ पुस्तक", – लिखनेवाला शायद यह कहना चाहता था कि इसमें गूढ़ बातें हैं। इस पुस्तक में दवीद नाम का एक मनीषी यह कहता है कि ह्वेल मच्छ अपनी पीठ पर धरती माता को संभाले हुए है, और जब भी "ह्वेल मच्छ हिलता-डुलता है, धरती माता कांप उठती है।"

मध्य युग में अरब लोग ही सबसे अधिक साहसी यात्री थे। सातवीं सदी में अरबों ने विशाल भूक्षेत्र पर विजय पा ली और फिर व्यापार करने लगे, माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने लगे। अरब सौदागरों ने पूर्वी यूरोप की, स्लावों के इलाकों की और केंद्रीय एशिया के देशों की यात्रा की। भूमध्यरेखा से दक्षिण की ओर स्थित अफ़्रीका के आश्चर्यजनक देशों के बारे में सबसे पहले उन्हीं ने बताया। उन्हीं ने यूरोपवालों को अफ़्रीका के उष्ण कटिबंधीय देशों से और मडागास्कर द्वीप से परिचित कराया।



नौवीं सदी में इब्न होर्दाबेह ने अपने समय का सारा भौगोलिक ज्ञान संकलित किया। उसकी पुस्तक का नाम था "पथों और राज्यों की पुस्तक"। खुद तो उसने बहुत यात्राएं नहीं कीं। लेकिन वह बगदाद के ख़लीफ़ा का दरबारी था, सो अरब सौदागर, अधिकारी और यात्री दरबार में जो कुछ बताते थे वह सारी जानकारी वह जमा कर सकता था।



इसके कुछ समय बाद इब्न रुस्ता ने एक पुस्तक लिखी। उसने अपनी आंखों जो कुछ देखा था, उसके बारे में लिखा और अपनी पुस्तक का नाम "जवाहिरातों की किताब" रखा। इस हस्तलिखित ग्रंथ का अंतिम, सातवां भाग ही बचा रहा है, जिसमें पूर्वी यूरोप में रहनेवालों के बारे में बहुत कुछ बताया गया है। इब्न रुस्ता ने स्लावों और कीयेव रूस के बारे में भी बताया है, जिनके बारे में पश्चिमी यूरोप और पश्चिमी एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया के लोग बहुत कम जानते थे।



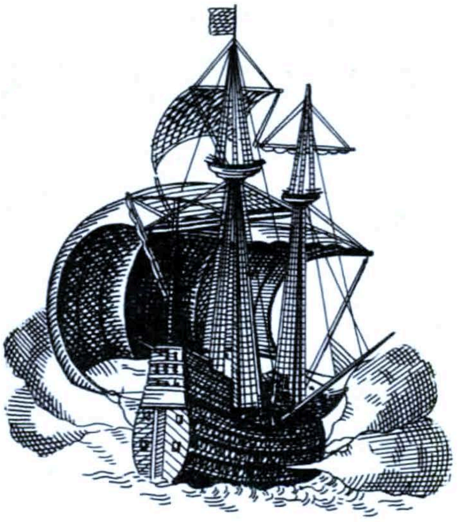
दसवीं सदी में इब्न फ़दलान ने अपनी पुस्तक "वोल्गा की यात्रा" में पूर्वी यूरोप के निवासियों के बारे में और अधिक जानकारी दी।



बगदाद में जन्मे मसूदी ने निकट और मध्य पूर्व, मध्य एशिया, कोहकाफ़ (काकेशिया) और पूर्वी यूरोप की यात्रा की। कारवां के साथ उसने पूर्वी अफ़्रीका का सारा दक्षिणी भाग देखा, चीन और जावा की उसे अच्छी जानकारी थी। उसकी एक पुस्तक का नाम है "सोने के मैदान, हीरों के फूल" और दूसरी का नाम है "सूचनाएं और प्रेक्षण"।

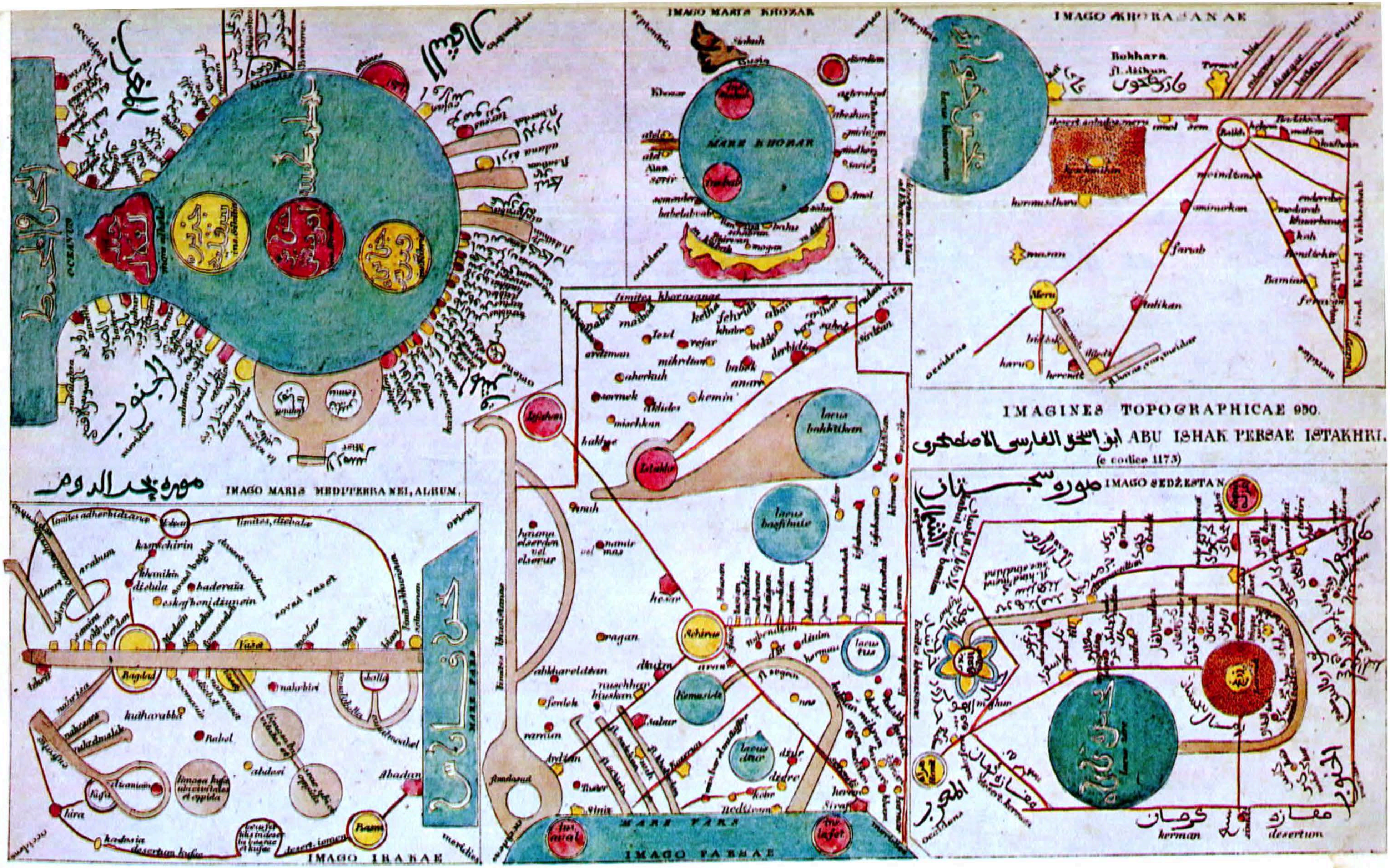
मध्य युग के ऐसे अनेक यात्रियों के नाम मैं गिना सकता हूं, जो हमारे लिए अपनी अनमोल रचनाएं छोड़ गये हैं, जैसे कि अपने ज़माने का सबसे बड़ा विद्वान, ख़्वारज़्म का अबू-रेहन मुहम्मद अल बरूनी या सभी युगों का महानतम यात्री इब्न बत्तूत जिसने पच्चीस वर्ष की अपनी यात्राओं में कम से कम सवा लाख किलोमीटर की दूरी तय की। लेकिन ये मुस्लिम यात्री और विद्वान भी पृथ्वी को सपाट ही समझते थे, हां वे ईसाइयों की तरह इसे चौकोर नहीं, बल्कि गोल बताते थे और ऐसी ही इसे अपने मानचित्रों में दिखाते थे। इनमें से एक के बारे में मैं तुम्हें आगे चलकर बताऊंगा।







अध्याय चार



बारहवीं सदी का मानचित्र।

बहुत पुराने ज़माने में ही लोगों को अपने आस-पास के इलाके का खाका बनाना आता था। इसके बिना वे दूसरों को कैसे यह समझा सकते थे कि कहां शिकार अच्छा मिलता है और कहां कंद-मूल अधिक अच्छे होते हैं? फिर ये आदिम खाकानवीस अपने खाकों में आस-पड़ोस की बस्तियां दिखाने लगे, रेखाओं-मार्गों से उन्हें अपने बस्तियों से जोड़ने लगे। और जब दूर देशों को कारवां जाने लगे तब कांरवां के रास्तों का नक्शा बनाना और वर्णन करना पड़ा।

छठी सदी ई० पू० में हुए प्राचीन यूनानी दार्शनिक अनाक्सिमंदर ने ऐसे बहुत से वर्णन जमा करके सारे संसार का एक खाका बनाने की कोशिश की। इस तरह पहला मानचित्र बना।

नये मानचित्र बनाने का काम अत्यंत रोचक है। मैं जब छोटा था तो मुझे रहस्यमय निर्जन टापू बनाने का शौक था। ऐसा करते हुए मैं पहाड़ों में कत्थई रंग भरता था, जैसे कि वे होते ही हैं। नदियां, झीलें और समुद्र नीले रंग से बनाता था, जंगल और मैदान हरे रंग से। ऐसे टापुओं पर शानदार शिकार करने, सुंदर राजकुमारियों को बचाने और नागों द्वारा रक्षित खज़ाने खोजने में बड़ा मज़ा आता है।

फिर जब मैं बड़ा हुआ तो मुझे पता चला कि लोगों ने लिखना अभी नहीं सीखा था, लेकिन खाके बनाने लगे थे।

सोवियत संघ में काले सागर से थोड़ी दूर बेलया नदी के तट पर मायकोप नाम का एक शहर है। यह कोई बहुत पुराना नगर नहीं है, लगभग सौ साल पहले बना था। नगर से थोड़ी दूर एक टीला है, जिसे कभी लोगों ने मिट्टी डाल-डालकर बनाया था। लेकिन कब बनाया था और किसलिए बनाया था – यह बात सब भूल चुके हैं। एक बार पुरावेत्ताओं ने सोचा: "चलो, इसे खोदकर देखते हैं। हो सकता है, यहां ऐसी चीज़ें मिलें, जिनसे यहां जो कुछ घटा था उसका इतिहास पता लगाने में मदद मिले।"

बस, वे काम में जुट गये। एक अभियान दल वहां भेजा गया और वह वहां खुदाई करने लगा। एक दिन खुदाई की – कुछ नहीं मिला। दो दिन, तीन दिन बीते – खंदकों में से बस मिट्टी और पत्थर ही निकल रहे थे। पुरावेत्ता उदास हो गये। सोचने लगे कि बेकार ही इस काम में हाथ डाला। पर तभी उन्हें खज़ाना मिला।

क्या कुछ नहीं था इस खज़ाने में! कब्र के ऊपर सोने के पत्तरोंवाली छतरी बनी हुई थी। यह छतरी चांदी के चार स्तंभों पर टिकी हुई थी, जिनके निचले सिरों पर घुमावदार सींगोंवाले वृषभों की आकृतियां थीं। सोने-चांदी से बनी ये आकृतियां कितनी सुंदर थीं! यहां पास ही सोने-चांदी के बर्तन और भांति-भांति के आभूषण मिले। सभी औज़ार और अस्त्र पत्थर और शुद्ध तांबे के थे। सचमुच ही लाजवाब खज़ाना था।

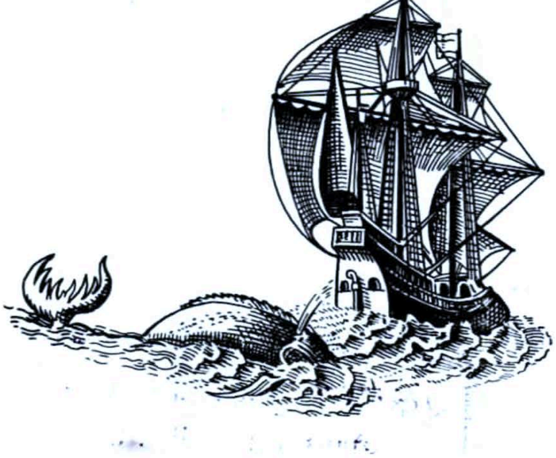
यह ज़रूर किसी विशाल और संपन्न कबीले के मुखिया की कब्र थी। पता नहीं वह अपनी मौत मरा था, या शत्रु के साथ मुठभेड़ में खेत रहा था। इतना पक्का है कि वह बहुत आदरणीय व्यक्ति था और कबीलेवालों ने बड़े सम्मान के साथ उसे दफ़नाया।

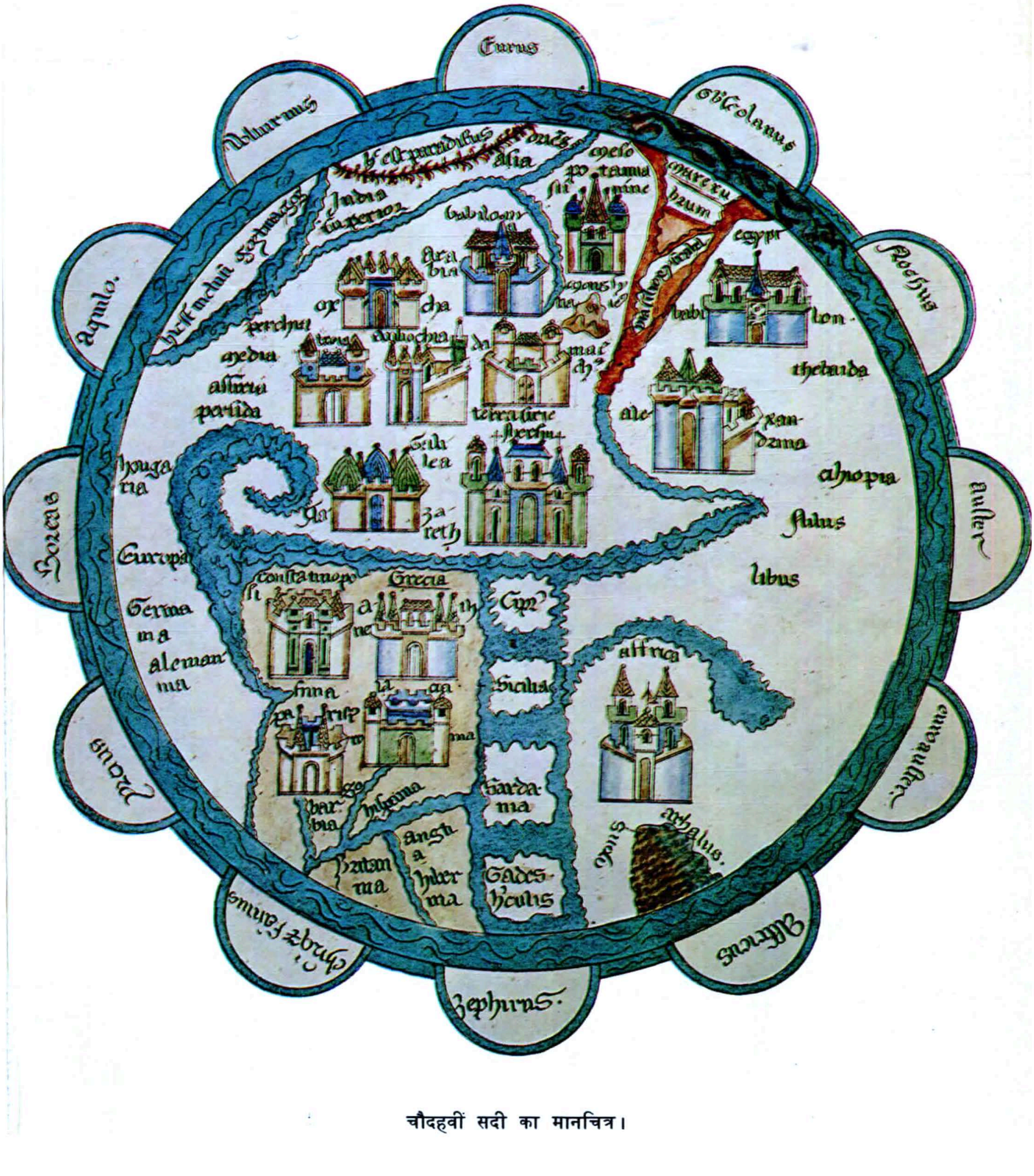
लेकिन पुराविदों को सोना-चांदी पाकर इतनी खुशी नहीं हुई। सबसे बढ़िया खोज थी – मिट्टी के कुछ बर्तन, जिन पर तरह-तरह के चित्र बने हुए थे।

इन कलशों में लोग कभी घी और मदिरा रखते थे। अज्ञात चित्रकारों ने इन कलशों पर काकेशिया के पहाड़ बनाये, इन जगहों पर बहती नदी दिखायी। बस, सच्चे खाके बन गये, सो भी इतने ब्योरेवार कि इन पर जो स्थान इंगित थे, उन्हें पुराविदों ने तुरंत ही ढूंढ़ लिया।

लेकिन सबसे अधिक आश्चर्य पुराविदों को तब हुआ जब उन्होंने यह पता लगाया कि ये चीज़ें कितनी पुरानी हैं। पता चला, पूरे चार हज़ार साल! उस ज़माने में यहां के मैदानों में बसे कबीलों ने शायद लिपि का आविष्कार न किया हो, लेकिन नक्शे बनाने उन्हें आते थे।

अभी कुछ साल पहले तुर्की में एक प्राचीन बस्ती की खुदाई करते हुए पुराविदों को मिट्टी की पट्टिका पर खुदा नक्शा मिला है। विशेषज्ञों का कहना है कि यह पट्टिका नौ हज़ार साल पुरानी है। आज यह खाका-मानचित्र संसार में सबसे पुराना माना जाता है। कौन जाने, ऐसा ही है या नहीं। हो सकता है, इससे भी पुराने कहीं पर ज़मीन में दबे हुए हों? बस, हमें अभी मिले नहीं हैं।





चौदहवीं सदी का मानचित्र।

अरब भूगोलवेत्ता का चांदी का मानचित्र



भूमध्यसागर में स्थित सिसिली द्वीप के पालेर्मो शहर में अबू-अब्दल्ला मोहम्मद इब्न इदरीसी नाम का एक अरब विद्वान रहता था। वह अमीर बाप का बेटा था। वर्षों तक उसने पढ़ाई की थी और दूर-दूर की यात्राएं की थीं। एक बहुत बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में वह प्रसिद्ध हुआ।

सिसिली के राजा रोजर द्वितीय का दरबार पालेर्मो में ही था। उसका जन्म नोर्मेंडी में हुआ था, जो यूरोप के उत्तर-पश्चिम में है, लेकिन किस्मत उसे सिसिली में ले आयी। और वह यहीं रह गया। राजा रोजर को उत्तरी देशों का बड़ा अच्छा ज्ञान था, इस बात पर उसे गर्व था और भूगोल उसे बहुत अच्छा लगता था (ऐसा अक्सर होता है न, हम जिस काम में कुशल होते हैं, वही हमें ज़्यादा अच्छा लगता है ?) ।



राजा ने विद्वान भूगोलवेत्ता के बारे में सुना। लोगों का कहना था कि दक्षिणी देशों का जितना अच्छा ज्ञान उसको है उतना और किसी को नहीं। राजा ने इब्न इदरीसी को दरबार में बुलवाया और यह सुझाव रखा कि वे दोनों मिलकर एक मानचित्र बनायें। राजा को उत्तरी देशों का अच्छा ज्ञान था और अरब भूगोलवेत्ता को दक्षिणी देशों का। सो वे दोनों मिलकर उस सारे संसार का जहां लोग बसे हुए हैं, सबसे बड़ा, सबसे अधिक विस्तृत और सबसे अधिक सही मानचित्र बना सकते हैं।



विचार और ज्ञान आश्चर्यजनक वस्तुएं हैं। ये ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें चाहे जितना ख़र्च करो ये कभी खत्म नहीं होतीं। एक पुरानी सूक्ति है: यदि तुम्हारे पास एक सेब है और मेरे पास एक सेब है, और हम दोनों अपने सेबों की अदला-बदली कर लें, तो दोनों के पास एक-एक सेब ही रहेगा। लेकिन यदि तुम्हारे पास भी और मेरे पास भी ज्ञान और विचार हैं, और हम उनका विनिमय कर लें, तो दोनों का ज्ञान पहले से दुगना हो जायेगा।

इब्न इदरीसी राजा के साथ काम करने को तैयार था। वे दोनों मिलकर मानचित्र को अधिक पूर्ण और सच्चा बना देंगे।

तब राजा ने पूछा कि इतने परिश्रम से बनाये जानेवाले मानचित्र के लिए कौन सी सामग्री ली जाये ? उसे लगता था

कि कागज़ ऐसे नक्शे के लिए बहुत ही मामूली चीज़ है और फिर वह समय के साथ पुराना पड़कर खराब हो जायेगा। अरब विद्वान ने इस बात का क्या जवाब दिया, यह तो हम नहीं जानते। हां, इतना पता है कि राजा ने अपने खज़ाने से सारी चांदी निकालने का हुक्म दिया और कहा कि इसे गलाकर जितनी बड़ी गोल प्लेट बन सकती है, बना डालो (तुम्हें याद है न कि अरब भूगोलवेत्ता पृथ्वी को सपाट किंतु गोल मानते थे, जैसे कि सैनिक की ढाल?)। बस, इस पर शानदार मानचित्र अंकित हो।

राजा की बात कौन टाल सकता है? बस, कारीगर काम में जुट गये। आखिर चार आदमी चांदी की भारी ढाल बड़ी मुश्किल से उठाकर अरब भूगोलवेत्ता के कमरे में ले आये। उस दिन से शुरू करके पूरे पंद्रह साल तक अबू अब्दल्ला मोहम्मद इब्न इदरीसी इस अमूल्य ढाल पर उन सब देशों की रूप-रेखा बनाता रहा जिन्हें राजा रोजर और वह स्वयं जानता था।

यह नक्शा पूरा होने से पहले ही राजा का देहांत हो गया। लेकिन अरब भूगोलवेत्ता ने अपना काम पूरा करके ही छोड़ा। जैसा कि राजा के साथ मिलकर उन्होंने सोचा था वैसा ही मानचित्र बना। चांदी के विशाल पट्ट पर विभिन्न देश, समुद्र और नदियां, पहाड़ और रेगिस्तान अंकित थे। एक लंबे कागज़ पर सब कुछ समझाया गया था कि मानचित्र में क्या-क्या दिखाया गया है।

राजा और भूगोलवेत्ता से बस एक ही गलती हुई। चांदी बहुत ही कम टिकाऊ सामग्री सिद्ध हुई! शीघ्र ही राजा के उत्तराधिकारियों को धन की आवश्यकता हुई और ... चांदी का मानचित्र गायब हो गया। इब्न इदरीसी ने मामूली कागज़ पर उसकी नकलें न उतारी होतीं तो हमें उसके बारे में कुछ पता ही न चलता। कागज़ पर बने ये मानचित्र बरसों तक लोगों के काम आते रहे और कुछ तो अब तक बचे रहे हैं। तो, सोचो ज़रा, क्या चीज़ ज़्यादा टिकाऊ है – चांदी या मामूली कागज़?

अरब भूगोलवेत्ता के मानचित्र पर बारहवीं सदी के मंध्य तक प्राप्त सारी भौगोलिक जानकारी अंकित है। हां, यह सच है कि लोगों को तब पृथ्वी का पर्याप्त ज्ञान नहीं था, और जो वे नहीं जानते थे, वह अपने मन से गढ़ लेते थे। इसलिए इब्न इदरीसी और रोजर द्वितीय के मानचित्र पर कुछ ऐसा भी देखा जा सकता है, जो न कभी था, न है। लेकिन यह आज के ज्ञान की दृष्टि से गलती है, आज से आठ सौ साल पहले कोई यह नहीं कह सकता था कि इस मानचित्र में कोई गलती है।

घर-घुस्सुओं के लिए मानचित्र



कहना न होगा कि जो कहीं आता-जाता नहीं उसके मन में कोई सवाल भी नहीं उठते। वह या तो किसी भी बात का विश्वास नहीं करता और सारे संसार को उस स्थान जैसा ही समझता है, जहां वह स्वयं रहता है, या सभी बातों पर, बिल्कुल बेसिरपैर की बातों पर भी विश्वास करता है।

इस पन्ने पर बना मानचित्र देखो। यह मानचित्र मठ-वासियों ने खास तौर पर घर-घुस्सुओं के लिए बनाया था, उन लोगों के लिए, जिन्हें यात्राओं का कोई शौक नहीं था, जिन्हें घर बैठकर खाना-पीना ही अच्छा लगता था और वे मनगढंत बातें सुनना, जो परदेस से लौटे गपोढ़शंख और शेखचिल्ली अपने किस्सों में जोड़ते थे।

ऐसे घर-घुस्सुओं के लिए ही मठवासियों ने तरह-तरह



की कपोल-कल्पनाएं एकत्रित करके यह मानचित्र बनाया, जिसे देखकर साहसी व्यक्ति भी सोचने लगेगा कि लंबे सफ़र पर निकले या नहीं।

यह देखो, एक टांगवाला आदमी बना हुआ है। तुम सोचते हो अपाहिज है? हरगिज़ नहीं। यह तो किसी यात्री ने मठवासियों के सामने ऐसी गप हांकी होगी कि दूर देश भारत में एक टांगवाले लोगों का पूरा कबीला रहता है। वे बहुत तेज़ दौड़ते हैं और जब बारिश होती है तो अपना पंजा ऊपर उठाकर उससे छतरी का काम लेते हैं।



इन गपोढ़शंखों ने ही ये किस्से भी गढ़े कि वहां भारत में ही कुत्तों के सिरवाले और घोड़ों की टांगोंवाले लोग रहते हैं और ऐसे अभागे लोग भी जिनके मुंह ही नहीं होता। महान गंगा के किनारे घूमते हुए वे बस सुगंधों से ही पेट भरते हैं, और



जब उन्हें कहीं दूर जाना होता है तो अपने साथ बस एक जंगली सेब रख लेते हैं, जिसकी सुगंध देर तक बनी रहती है। अफ़्रीका में तो मठवासियों ने ऐसे लोग दिखाये जिनके सिर ही नहीं है। उनकी आंखें, नाक, कान छाती पर हैं!

मानचित्र पर भीमकाय लोग भी दिखाये गये हैं, जिनके कान इतने बड़े हैं कि कंबल का काम देते हैं। उधर एक आदमी धूप से बचने के लिए अपने निचले होंठ से चेहरा ढक रहा है – यह बड़े होंठवाले कबीले के लोग हैं।

पुराने किस्से-कहानियों के बौने, दैत्य, दानव, अजदहे और भयावह जीव – इन सबको ही मठवासियों ने इस मानचित्र पर बसा दिया है। इसकी बदौलत जो लोग लंबी यात्राएं पसंद नहीं करते थे वे सदा कह सकते थे कि दूर देशों में ऐसे डरावने जीव हैं, इसलिए घर पर बैठे रहना ही अच्छा है।

मध्ययुग के पढ़े-लिखे लोगों के पास जो पुस्तकें आती थीं, उनमें समय-समय पर ऐसे दार्शनिकों की रचनाओं के अनुवाद भी होते थे, जो दैवी शक्ति के बिना प्रकृति की परिघटनाओं की व्याख्या करते थे। ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा था, त्यों-त्यों लोग भांति-भांति की अधिकाधिक जानकारी पाते जा रहे थे। और इन निर्विवाद तथ्यों का सपाट पृथ्वी की कथा से कोई मेल नहीं बैठता था।

अंततः एक ऐसी घटना हुई, जिससे ढाल जैसी सपाट पृथ्वी की धारणा सदा के लिए बस कथा ही बन गयी और यह पूरी तरह सिद्ध हो गया कि हमारा ग्रह गोलाकार है। २० सितंबर १५१९ को अटलांटिक महासागर में गिरनेवाली ग्वादाल्क्वीवीरा नदी के मुहाने में स्थित सेविले बंदरगाह से पांच स्पेनी जहाज़ों ने प्रस्थान किया और कनारी द्वीप समूह से होते हुए पश्चिम दक्षिण को ब्राज़ील की ओर बढ़े। इस बेड़े के ध्वजवाहक पोत "ट्रिनिडाड" पर एडमिरल फ़ेर्नान मैगेलान का झंडा फहरा रहा था। उसने स्पेन के राजा को यह वचन दिया था कि वह पूरब में स्थित "मसालों के द्वीपों" तक पश्चिम के रास्ते से पहुंचेगा।

तीन साल बाद ६ सितंबर १५२२ को बेड़े में से बचा एकमात्र जहाज़ "विक्टोरिया" कप्तान सेबास्टियन डेल कानो की कमान में पृथ्वी का चक्कर लगाकर सेविले बंदरगाह में वापस पहुंचा। इस प्रकार मानवजाति के इतिहास में पहली बार संसार की परिक्रमा हुई और यह सिद्ध हो गया कि पृथ्वी एक गोला है।



लंबी यात्राओं के लिए मानचित्र

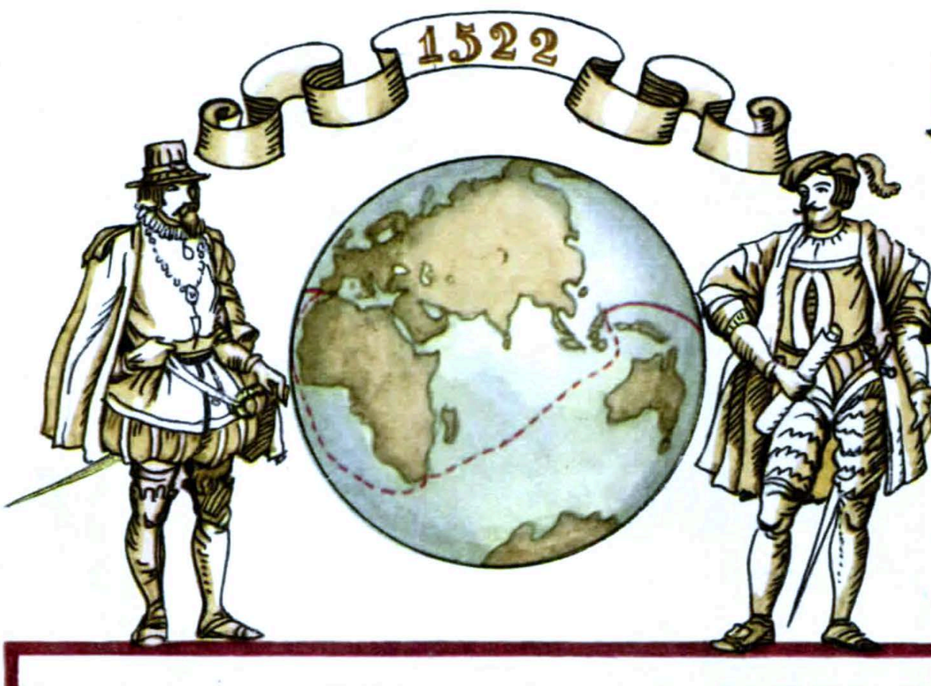


जब तक व्यापारी अंतःस्थलीय सागरों की यात्रा करते थे या तट से अधिक दूर नहीं जाते थे, तब तक जलपोतों के कप्तानों को इस बात की चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं थी कि पृथ्वी का रूप कैसा है। लेकिन अपने देश के तट से जितनी दूर जाते, उतनी ही अधिक गलतियां उन्हें पुराने मानचित्रों में ठीक करनी पड़तीं, उन मानचित्रों में, जो पृथ्वी के रूप को ध्यान में रखे बिना बनाये जाते थे।

पंद्रहवीं सदी में महान भौगोलिक खोजों का युग शुरू हुआ। पालदार जहाज़ महासागरों को लांघने निकले। ये कल्पनातीत साहस के कार्य थे। अभी तुम समझोगे कि ऐसा क्यों है।

आज सभी देशों के स्कूल छात्र यह जानते हैं कि पृथ्वी पर किसी भी स्थान की स्थिति भौगोलिक सूचकांकों – अक्षांश यानी समानांतर और रेखांश यानी देशांतर – में व्यक्त की जा सकती है। अक्षांश का अर्थ है भूमध्यरेखा से दूरी,









जो अंशों में गिनी जाती है। उत्तर और दक्षिण दोनों ओर शून्य से नव्वे तक अंश होते हैं। देखो, यहां हमने इसका चित्र दिया है, ताकि तुम आसानी से यह समझ सको।

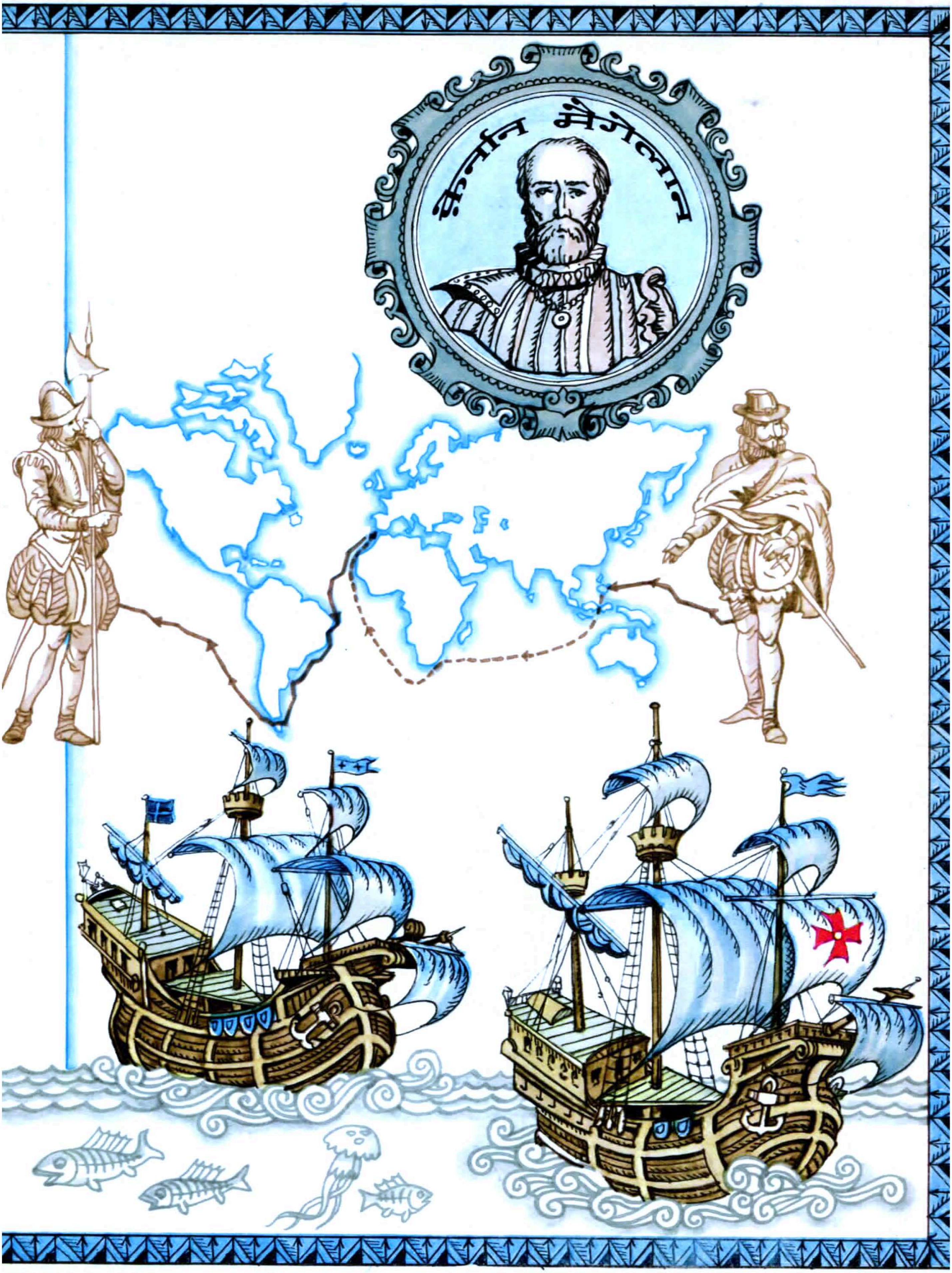
रात को ध्रुव तारे और ठीक दोपहर को सूर्य का उन्नतांश नाप कर अक्षांश का पता सहज ही लगाया जा सकता है। जहाज़ियों के पास पुराने ज़माने से ही इसके लिए अंशमापी यंत्र रहे हैं। इनकी मदद से समुद्र में जहाज़ पर से ही उन्नतांश मापा जा सकता है।

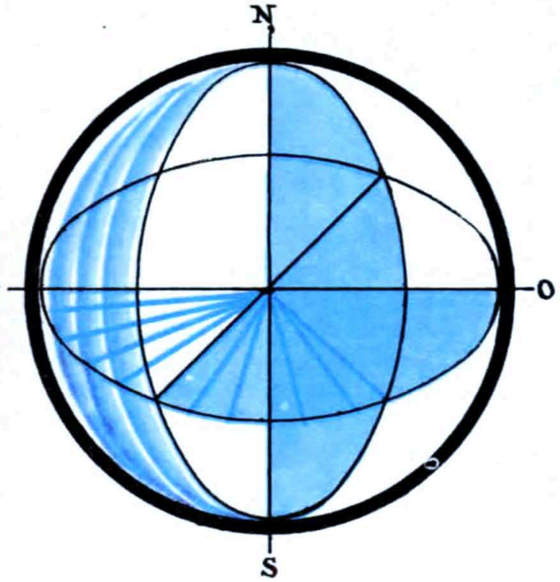


रेखांश का मामला अधिक टेढ़ा है। जिस बिंदु पर हम स्थित हैं उसके याम्योत्तर (अर्थात दक्षिण और ध्रुव से होता हुआ इस बिंदु से गुज़रनेवाला वृत्त) के तल तथा जिस याम्योत्तर को शून्य माना गया है, उसके तल के बीच के कोण को रेखांश कहते हैं। (आजकल ब्रिटेन की ग्रीनविच वेधशाला से गुज़रनेवाले याम्योत्तर को शून्य माना जाता है।)

शून्य याम्योत्तर रेखा पृथ्वी को दो गोलार्धों – पूर्वी और पश्चिमी – में बांटती है, जबकि भूमध्यरेखा, जिसे विषुवद् रेखा भी कहते हैं, इसे दो अर्धों में बांटती है, जिनमें से प्रत्येक में १८० अंश होते हैं (तुम्हें याद है न कि पूरे वृत्त में ३६० अंश होते हैं)। पूरब की ओर शून्य से १८० अंश तक के रेखांशों को पूर्वी रेखांश कहा जाता है, जबकि पश्चिम की ओर के रेखांशों को पश्चिमी रेखांश। यह सब भी चित्र देखकर तुम आसानी से समझ सकते हो। लेकिन समुद्र में रेखांश का पता कैसे लगाया जाये? कई सौ साल तक यह कोई नहीं जानता था। सो, शुरू-शुरू में जब लंबी यात्राएं होने लगीं तो जहाज़ की स्थिति केवल अक्षांश से ही नियंत्रित की जाती थी।




फ़र्नान मैगेलान



उन दिनों नौचालक और कप्तान अपने जहाज़ का पथ बड़े रोचक ढंग से तय करते थे। मान लो पुर्तगाल से किसी जहाज़ को दक्षिण-पश्चिम की ओर महासागर के पार किसी द्वीप की ओर जाना है। सबसे पहले कप्तान यह पता लगायेगा कि जिस बंदरगाह में उसे पहुंचना है वहां दोपहर के समय सूर्य का उन्नतांश क्या है। इसके बाद वह जहाज़ को महासागर में ले जाकर दक्षिण की ओर मोड़ेगा। कुतुबनुमा देखते हुए वह ठीक दक्षिण को चलता जायेगा, जब तक कि सूर्य के आवश्यक उन्नतांश पर नहीं पहुंच जायेगा। तब वह जहाज़ को पश्चिम की और ९० अंश घुमाने का आदेश देगा और इस अक्षांश पर ऐन द्वीप तक बढ़ता जायेगा। सारे रास्ते वह दोपहर के समय सूर्य का उन्नतांश नापते हुए यह देखता रहेगा कि जहाज़ ठीक पथ पर चल रहा है या नहीं।



अगर तुम शतरंज खेलते हो तो तुम्हारा ध्यान इस बात की ओर गया होगा कि जहाज़ चलाने का यह तरीका शतरंज के घोड़े की चाल जैसा है। समुद्र में जहाज़ ले जाने के लिए कोई बहुत उपयुक्त तरीका नहीं है यह, है न?

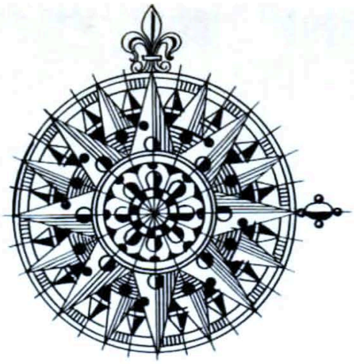
ऐसे नौचालन की अविश्वसनीयता को देखते हुए बहुत से देशों की सरकारों ने विशेष समितियां बनायीं, खुले समुद्र में रेखांश का पता लगाने की अच्छी विधि सुझानेवाले को बड़े-बड़े इनाम देने की घोषणा की। लेकिन कोई बात नहीं बनी। वैज्ञानिकों ने जो तरीके सुझाये वे या तो बहुत ही जटिल थे, या बहुत सही परिणाम नहीं देते थे।

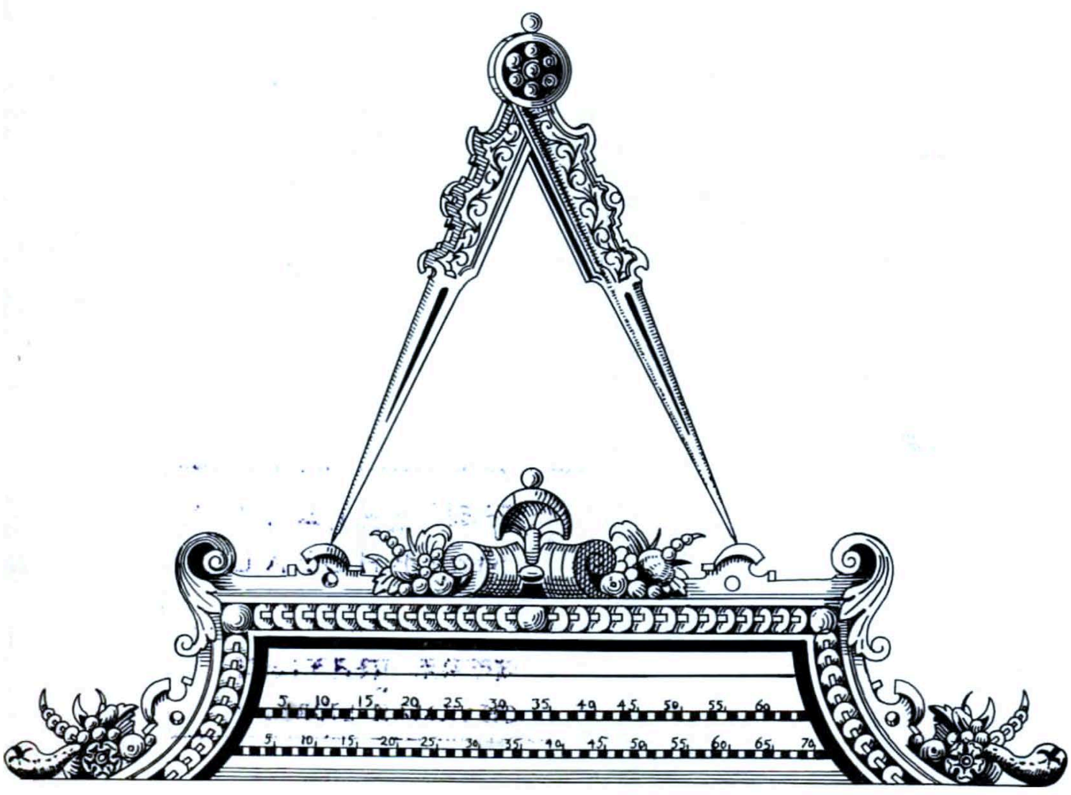
कालमापी, अर्थात जहाज़ पर लगी ऐसी घड़ी जो सारी यात्रा के समय शून्य याम्योत्तर का समय दिखाती है, बनाये जाने के बाद ही यह समस्या हल की जा सकी। तब "शून्य" समय और "स्थानीय" समय के अंतर से कप्तान रेखांश निर्धारित करने लगे। "स्थानीय" समय का, कम से कम दोपहर को, पता लगाना तो लोगों ने न जाने कब से सीख रखा है।

अक्षांशों और रेखांशों का पता लगाना सीखने के बाद अब एक और भी बड़ी समस्या आती है। पृथ्वी के गोल धरातल के चित्र को समतल पर कैसे उतारा जाये। कागज़ पर पृथ्वी का सही मानचित्र कैसे बनाया जाये?

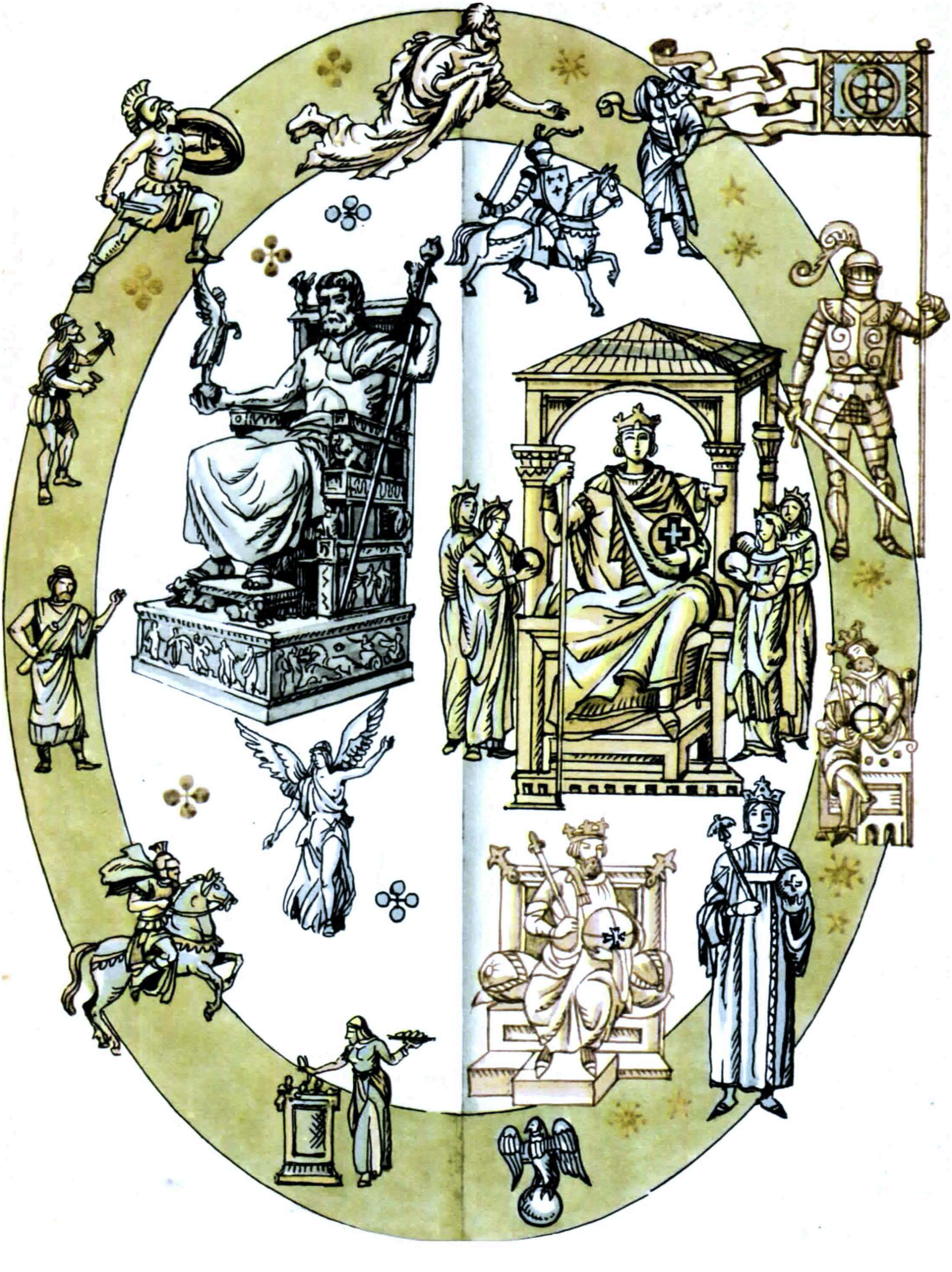
एक गुब्बारा लेकर मेज़ पर फैलाने की कोशिश करो। फैलाना इस तरह है कि उसके सभी बिंदु मेज़ के तल से सटे हों। शीघ्र ही तुम देखोगे कि ऐसा तभी किया जा सकता है, जबकि गोल गुब्बारे को पट्टियों में काट दिया जाये। ये पट्टियां जितनी कम चौड़ी होंगी, उतनी ही अच्छी तरह ये मेज़ पर बिछेंगी।

लेकिन सेवइयों की तरह कटा मानचित्र किसे चाहिए? इससे काम कैसे लिया जाये? वैसे, हम तुम्हें बता दें कि ऐसे मानचित्र बनाये गये थे। इन्हें पतली-पतली पट्टियों पर, जो मानो ग्लोब से उतारी गयी हों बनाया जाता था। धरातल को चित्रित करने के दूसरे तरीके भी आज़माये गये। धीरे-धीरे भौगोलिक मानचित्र बनाने की कला ज्ञान की एक अत्यंत रोचक शाखा बन गयी, जिसे मानचित्रकारी ही कहा जाता है। चूंकि गोले के धरातल को समतल पर सही-सही चित्रित करना असंभव है, सो वैज्ञानिकों ने मानचित्रों के अलग-अलग प्रक्षेप यानी धरातल को अलग-अलग कोणों से दिखाने के तरीके सोच लिये हैं। कुछ प्रक्षेपों में भूमध्यरेखा पर रेखांश सही-सही चित्रित करते हैं, लेकिन वहां से दूर होने के साथ-साथ वे विकृत होते जाते हैं। दूसरे प्रक्षेपों में याम्योत्तर रेखाएं सही-सही रहती हैं, लेकिन महाद्वीपों की रूपरेखा और क्षेत्रफल बदल जाते हैं। तीसरे प्रक्षेपों में यह कोशिश की जाती है कि महाद्वीपों के क्षेत्रफल उनके वास्तविक क्षेत्रफलों के समनुरूप हों, इत्यादि, इत्यादि।




5 10 15 20 25 30 35 40 45 50 55 60
5 10 15 20 25 30 35 40 45 50 55 60 65 70

अध्याय पांच





बहुत पहले ईसवी सदी आरंभ होने से भी कोई डेढ़ सौ साल पहले प्राचीन यूनानी दार्शनिक क्रेटस ने एक गोले के रूप में पृथ्वी का नमूना बनाया। यह तो तुम समझ ही गये होगे कि वह अरस्तू का अनुयायी और उसके शिष्यों का शिष्य था। खेदवश यह नमूना बचा नहीं रहा। लेकिन जिन लोगों ने उसे देखा था उनका कहना था कि क्रेटस ने उस पर थल ही थल बनाया था, जिसके बीच एक दूसरे को काटती नदियां, जिन्हें महासागर कहा जाता था, बहती थीं।





हां, आज इस नमूने को सच्चा ग्लोब तो नहीं कहा जा सकता यानी पृथ्वी का ऐसा माडल जिस पर उन दिनों लोगों को ज्ञात सभी महाद्वीप और महासागर अंकित होते। यह तो बस पृथ्वी का एक प्रतीक मात्र था। यों तो आगे चलकर लोग फिर से पृथ्वी को सपाट समझने लगे, तो भी रोम और बैज़ंतिया के सम्राटों ने क्रेटस के गोले को संसार पर अपनी सत्ता का चिन्ह बनाया। रोमन सम्राटों के इस गोले के ऊपर विजय देवी की मूर्ति बनी होती थी, जबकि बैज़ंतिया के ईसाई इस के ऊपर सलीब लगाते थे। तब से यूरोप में सभी राजाओं-महाराजाओं के राजचिन्हों में यह गोला अवश्य रखा जाने लगा। अब तो राजाओं के ये गोले राष्ट्रीय संग्रहालयों में कलाकृति और अमूल्य वस्तु के रूप में संरक्षित हैं, क्योंकि अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों ने इन्हें सोने से बनाया और रत्नों से जड़ा था।







पहला सच्चा ग्लोब यूरोप में पंद्रहवीं सदी में बना। एक बार प्राचीन जर्मन नगर नूरेनबर्ग में यहां के कपड़ा व्यापारी का बेटा मार्टिन बेहाइम अपने मां-बाप से मिलने आया। माता-पिता को इस बात का बहुत दुख था कि बेटे ने पिता का व्यवसाय नहीं अपनाया। इत्मीनान से दुकान पर बैठने के बजाय मार्टिन जहाज़ों में धक्के खाता फिरा। गणित का अध्ययन करके वह अनुभवी जहाज़ी बन गया और पुर्तगाल के राजा जुआन द्वितीय के यहां नौकरी करने लगा। धीरे-धीरे वह पुर्तगाल का प्रधान नौचालक



बन गया। राजा ने उसे अपना दरबारी बनाकर नाइट की उपाधि से विभूषित किया।

कुछ समय बाद इस नवधनाढ्य ने अपने शहर जाने और अपने सगे-संबंधियों को यह दिखाने की सोची कि परदेस में वह क्या से क्या बन गया है।

नूरनबेर्ग के गणमान्य नागरिक आश्चर्यचकित होकर मार्टिन की कहानियां सुनते थे, जो आधी दुनिया का चक्कर लगाकर आया था। उसका कहना था कि पृथ्वी एक गोला है। सुननेवालों ने तो कभी सोचा तक न था कि पृथ्वी गोल है। नगरवासी मार्टिन से अनुरोध करने लगे कि उसने जो कुछ देखा है उसका मानचित्र वह उनके लिए बना दे।

मार्टिन राज़ी हो गया। उसने एक फ़ुट आठ इंच व्यास का लकड़ी का एक गोला बनाने और उस पर पार्चमेंट चढ़ाने का आदेश दिया। फिर उसने जो कुछ देखा और सुना था उसके चित्र इस पर बना दिये और इन चित्रों के साथ इनका वर्णन भी लिख दिया। अच्छा तो यही होता कि वह ऐसा न करता! काली और लाल स्याही से ग्लोब पर ऐसी-



ऐसी अनहोनी बातें लिखी हुई थीं कि कुछ समय बाद नूरेनबर्ग के निवासियों को इस उपहार पर गर्व होने के बजाय दूसरों को इसे दिखाते शर्म आने लगी। वे स्थान जिन्हें अब सभी जानते थे मार्टिन के ग्लोब पर बिल्कुल गलत अक्षांशों पर दिखाये गये थे। ऐसी गलतियां तो अब साधारण से साधारण मानचित्रों में भी नहीं की जाती थीं। दूर के देशों का तो उसने बिल्कुल ही बेतुका वर्णन किया था।

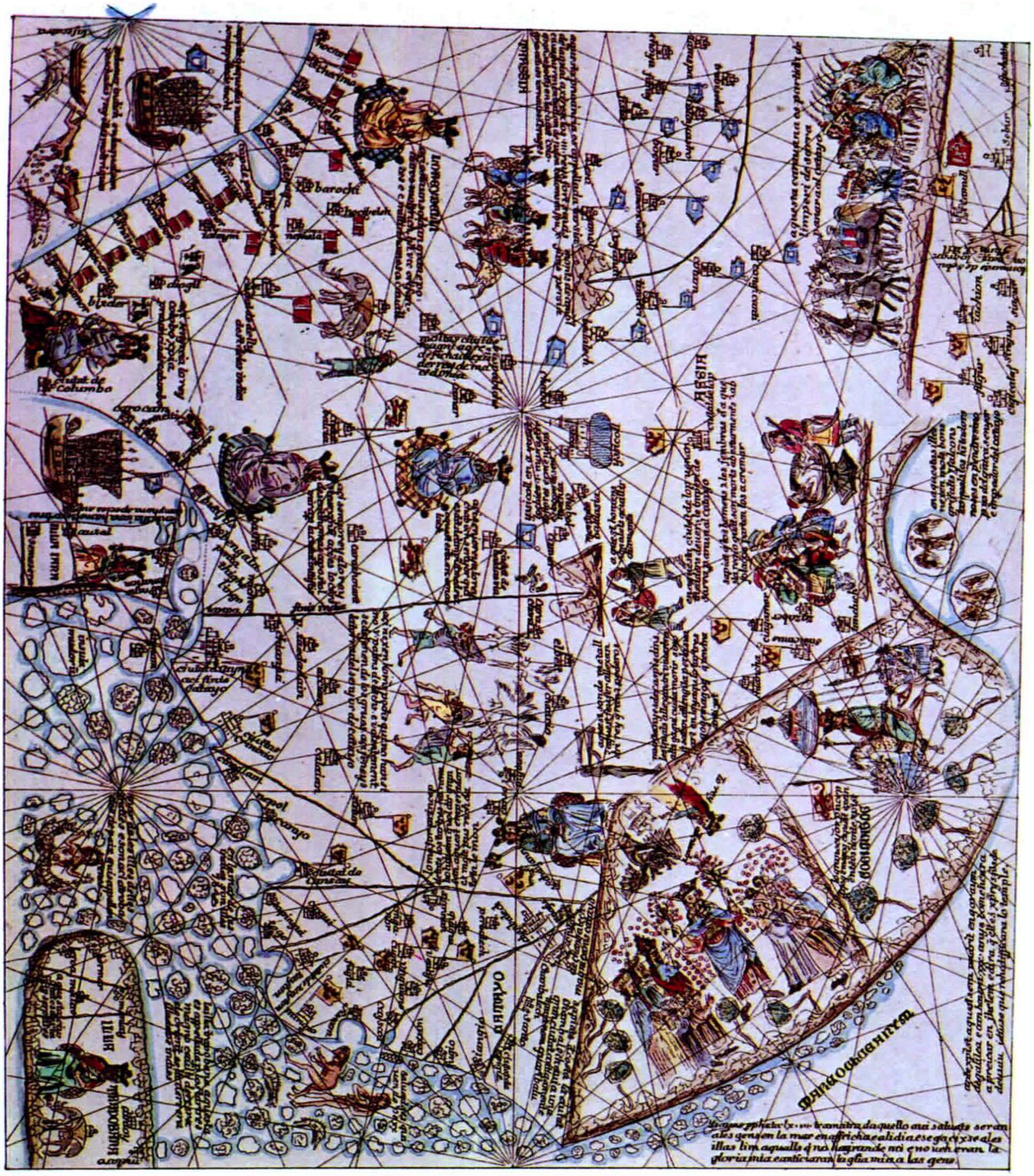
ज़रा सोचो कि जहां अमरीका है वहां मार्टिन ने पूरी द्वीप शृंखला बनायी और लिखा कि इन द्वीपों पर बहुत ही बड़े-बड़े लोग रहते हैं, कि वहां का एक आदमी चार-पांच आदमियों जैसे डील-डौल का होता है। ये लोग नंगे घूमते हैं। उनके कान बहुत लंबे होते हैं, मुंह चौड़ा, बड़ी-बड़ी डरावनी आंखें और बांहें दूसरे लोगों की बांहों से चारगुनी लंबी होती हैं।

मार्टिन की बात मानें तो जावा द्वीप पर दुमवाले लोग रहते हैं और जापान में डरावने समुद्री जीव और अजीबोगरीब मछलियां पायी जाती हैं।

इतना ज़रूर था कि मार्टिन का ग्लोब खूब रंग-बिरंगा था। हर देश में सिंहासन पर राजा आसीन था, चारों ओर राजचिन्ह और ध्वज बने हुए थे। दक्षिणी गोलार्ध पर, जिसके बारे में तब यात्री प्रायः कुछ नहीं जानते थे, मार्टिन ने लिखा कि कैसे उसने यह ग्लोब बनाया था।

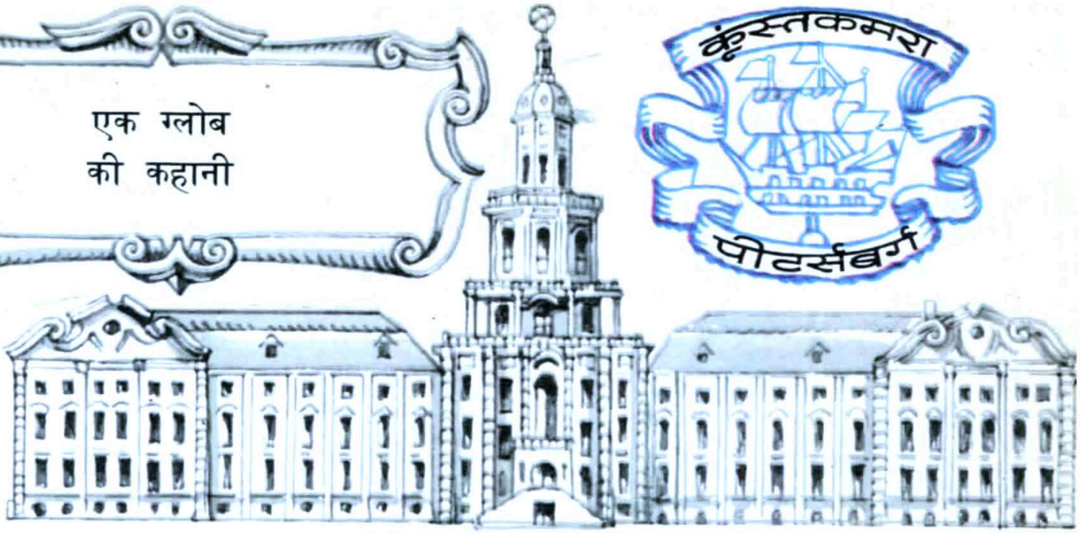
मार्टिन के बाद दूसरे देशों में भी कई ग्लोब बनाये गये। ये सब बहुत भारी-भरकम होते थे और महंगे पड़ते थे। बेशक, इन्हें यात्रा में अपने साथ नहीं ले जाया जा सकता था। हां, जहाज़ियों को नौचालन सिखाने के लिए बहुत अच्छे थे। सो, बहुत से कारीगरों ने पृथ्वी के नये-नये माडल बनाना जारी रखा। इनमें कुछ विचित्र भी थे। ऐसे ही एक ग्लोब के बारे में मैं तुम्हें बताना चाहता हूं।





एक प्राचीन मानचित्र

एक ग्लोब की कहानी



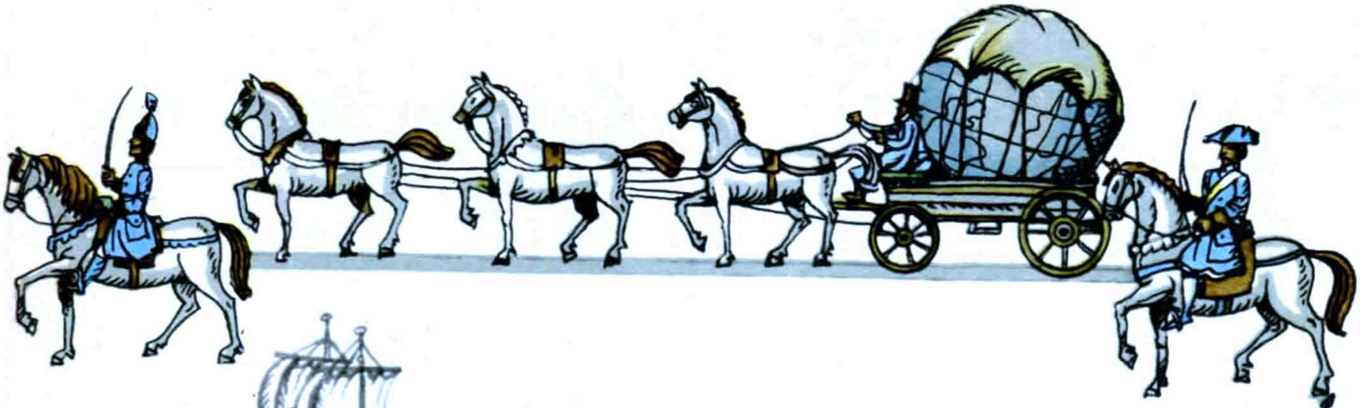


सोवियत नगर लेनिनग्राद में नेवा नदी के तट पर मीनारवाली एक पुरानी इमारत है। यह पहला रूसी संग्रहालय है, जिसे कूंस्टकमरा कहते हैं, कूंस्ट का अर्थ है शिल्प। यहां मीनार की पांचवीं मंज़िल पर एक विशाल ग्लोब रखा हुआ है। उसकी कहानी ही मैं तुम्हें बताऊंगा।

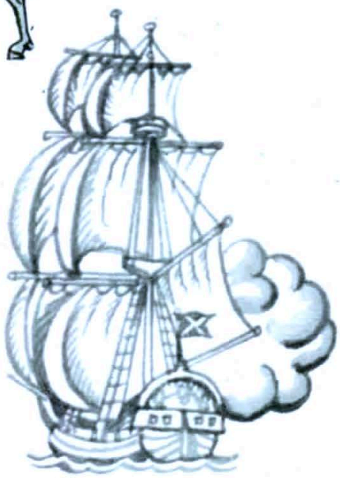
...१७१३ के पतझड़ की एक शाम को जर्मनी के गोट्टोर्प किले में खूब जगमग हुई। श्लेई नदी के बीचों-बीच एक टापू पर बना यह किला अजेय था लेकिन स्वीडन की फ़ौजें इस पर घेरा डाले हुए थीं जिससे यहां का ड्यूक बहुत परेशान था। रूसी सेना ड्यूक की मदद को आयी और उन्होंने मिलकर स्वीडों को खदेड़ दिया। इसकी खुशी में बालक ड्यूक के रीजेंट ने दावत दी। इस चतुर अधिकारी ने पता लगा लिया कि रूसी सेना के अफ़सरों में स्वयं ज़ार प्योत्र प्रथम भी है।

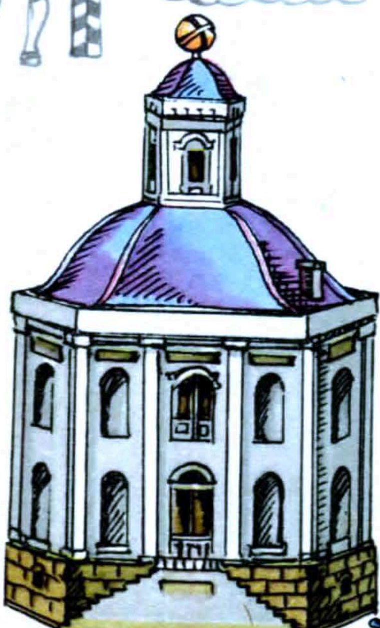


रीजेंट यह जानता था कि प्योत्र को भांति-भांति की विरली और विचित्र वस्तुओं का बहुत शौक है, सो वह किले के कमरों का चक्कर लगाता हुआ ड्यूक के संग्रह दिखा रहा था। ज़ार इन वस्तुओं को देखकर चकित तो हो रहा था, लेकिन बिना रुके चलता जा रहा था। एकाएक वह ठिठक गया। बहुत बड़े कमरे में झुटपुटा छाया हुआ था, कमरे के बीचोंबीच तीन मीटर व्यास का विशाल ग्लोब रखा हुआ था। वह लकड़ी का बना हुआ था और उस पर कागज़ मढ़ा हुआ था। कागज़ पर अलग-अलग रंगों











से वे सभी द्वीप और महाद्वीप बने हुए थे, जिनके बारे में यूरोपवासी तब जानते थे।

ज़ार ने तब दांतों तले उंगली दबा ली जब रीजेंट ने ग्लोब में बना एक छोटा-सा दरवाज़ा खोला और अतिथि को अंदर चलने को कहा। अंदर एक मेज़ थी, जिससे होकर ग्लोब की धूरी गयी थी। मेज़ के गिर्द बेंच थी। लाल बैंगनी रंग की दीवारों पर तांबे के सितारे जड़े हुए थे।

ज़ार को यह ग्लोब बहुत पसंद आया। रीजेंट के इशारे पर जब यह ग्लोब पृथ्वी की भांति धीरे-धीरे घूमने लगा तब तो प्योत्र की खुशी का ठिकाना न रहा। वह यह अजूबा हासिल करना चाहता था ताकि अपने देश में उसकी मदद से रूसी जहाज़ियों को नौचालन सिखाये। सो, तुम समझ ही सकते हो कि स्वीडन की नाकेबंदी से छुटकारा दिलाने के आभारस्वरूप जब कुछ दिन बाद ज़ार को यह ग्लोब भेंट में मिला तो उसे कितनी खुशी हुई होगी।

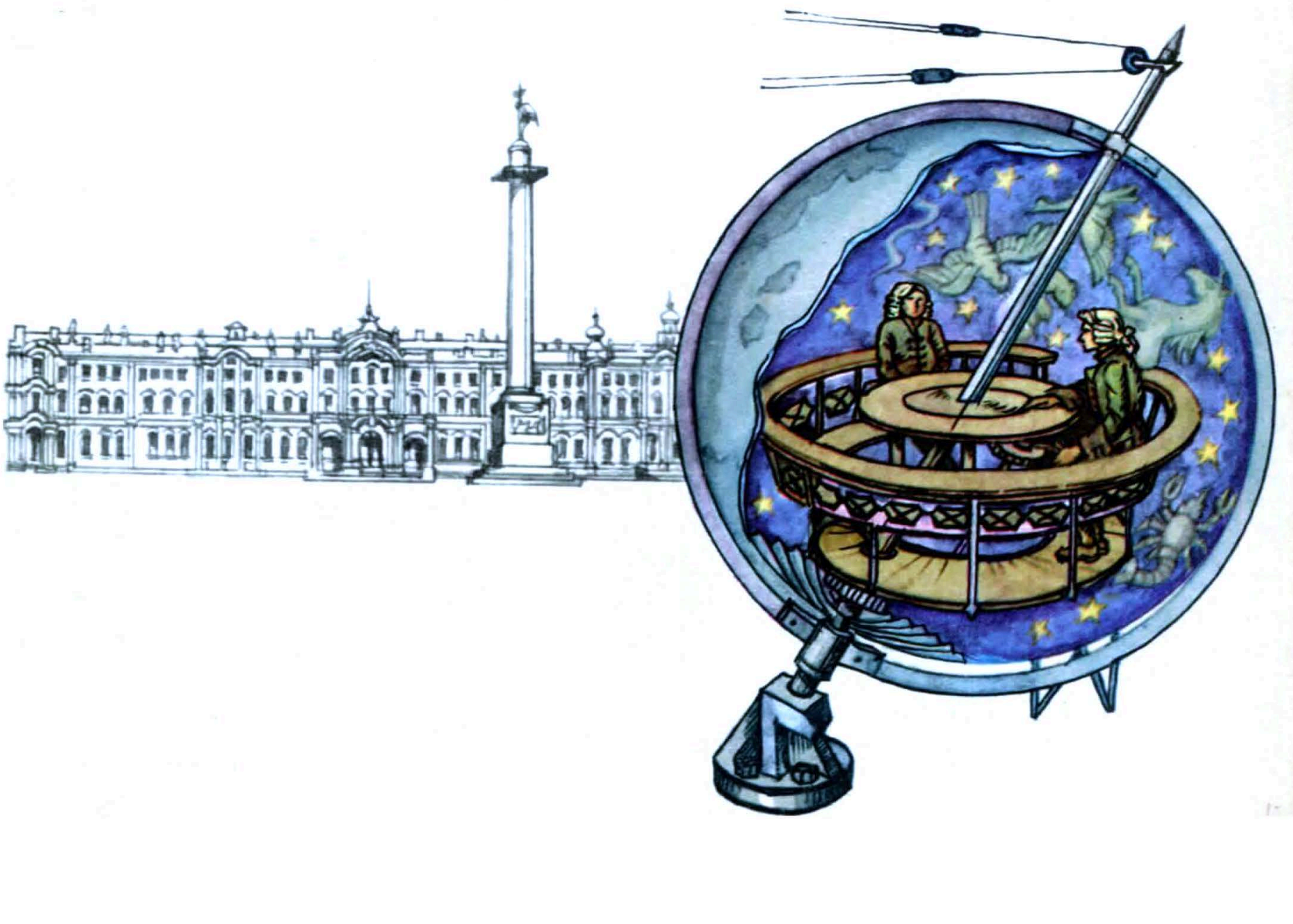
अब इस जर्मन अजूबे की रूस की राजधानी सेंट पीटर्सबर्ग तक की लंबी और कठिन यात्रा शुरू हुई, जो पूरे चार साल में जाकर पूरी हुई। पहले ग्लोब को जहाज़ पर ले जाया गया, फिर विशाल स्लेज पर लदे ग्लोब को घोड़ों ने ढोया। घोड़ागाड़ी के लिए जंगल काटकर रास्ते बनाने पड़ते थे। घोड़ागाड़ी को दलदलों और खड्डों से बचकर आगे बढ़ना होता था। जब गोट्टोर्प का यह अजूबा आखिर राजधानी पहुंच गया तो इसके लिए खास तौर पर बनायी गयी एक इमारत में इसे रखा गया।

प्योत्र महान की मृत्यु के पश्चात ही इस ग्लोब को

कूंस्टकमरे की मीनार में रखा गया। बीस साल बाद कूंस्टकमरे में आग लगने से इसके संग्रह का बड़ा भाग जल गया। गोट्टोर्प ग्लोब भी आग से खराब हो गया। बहुत दिनों तक ऐसा कोई आदमी नहीं मिला जो इस अजूबे को नवजीवन प्रदान करने पर राज़ी होता। आखिर तिरूतिन नाम के एक कारीगर ने जला हुआ ग्लोब ठीक करने का बीड़ा उठाया। अपने थोड़े से सहायकों के साथ मिलकर उसने ग्लोब का नया ढांचा बनाया, उसे घुमाने के यंत्र की मरम्मत करके उसे और भी अधिक अच्छा बनाया। उसने पीतल के दो छल्ले बनाये। उन्हें ग्लोब के गिर्द भूमध्यरेखा और याम्योत्तर रेखा की भांति लगाया। फिर चित्रकार ग्लोब पर काम करने लगे। उन्होंने भी ग्लोब में बहुत कुछ बदला, क्योंकि तब तक बीते सौ वर्षों में पृथ्वी पर बहुत से नये स्थानों की खोज हुई थी, पहले से ज्ञात स्थानों के बारे में नयी, अधिक सही जानकारी प्राप्त हुई थी।

अंदर से ग्लोब की दीवारों पर नीला रंग किया गया। नक्षत्रों के प्रतीकात्मक चित्र बनाये गये और सुनहरी कीलों



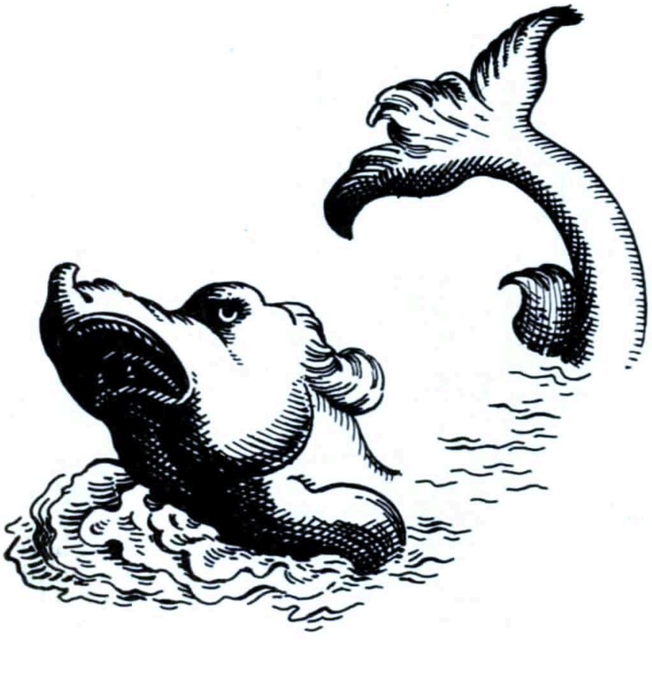


के रूप में तारे। अब तो यह ग्लोब पहले से भी कहीं अच्छा हो गया।

१९०१ में यह ग्लोब त्सारस्कोये सेलो नामक स्थान में ले जाकर रखा गया, अब यह स्थान पुश्किन नगर कहलाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनों ने इस नगर पर कब्ज़ा कर लिया। सोवियत सेनाओं ने जब पुश्किन नगर मुक्त कराया तो यहां न ग्लोब मिला, न उसके अवशेष। लंबी खोज के बाद जर्मन नगर लुबेक में यह ग्लोब मिला, जहां फ़ासिस्ट इसे उठाकर ले गये थे।

दो सौ साल पहले की ही भांति फिर से इस ग्लोब को जहाज़ पर लादा गया। अर्ख़ांगेल्स्क बंदरगाह में इसे मालगाड़ी के खुले डिब्बे पर रखा गया और इस तरह ग्लोब लेनिनग्राद वापस लौटा।

१९४८ में कूंस्टकमरे की मीनार की दीवार में छेद किया गया और क्रेन से ग्लोब को पांचवीं मंज़िल पर पहुंचाया गया, जहां इसे आज भी देखा जा सकता है।



अध्याय छह


ΡΟΔΟΣ

पुराने ज़माने से ही लोग यह जानने को उत्सुक रहे हैं कि हमारी पृथ्वी का आकार क्या है और रूप कैसा है।

ऐरातोस्थेनस के बाद अनेक विद्वानों ने उसका प्रयास दोहराया। लेकिन सबके आंकड़े अलग-अलग निकले। प्राचीन यूनानी गणितज्ञ पोसिडोनियस ने यह पता लगाया कि रोड्स से सिकंदरिया तक पहुंचने में जहाज़ों को कितना समय लगता है। फिर उसने अगस्त्य तारे का उन्नतांश नाप कर पृथ्वी की परिधि की गणना की। लेकिन उसका परिणाम इतना सही नहीं था, जितना कि ऐरातोस्थेनस का था।

इसके लगभग एक हज़ार साल बाद नौवीं सदी में ख़लीफ़ा अल-ममून ने अपने दरबार के विद्वानों को पृथ्वी मापने का काम सौंपा। इन विद्वानों ने मेसोपोटामिया में काम किया लेकिन इनकी गणनाएं खो गयी हैं।

पृथ्वी का आकार पता लगाने के और भी प्रयास हुए।

सोलहवीं सदी में फ़्रांस के एक डाक्टर ने अपनी बग्घी के पहिये में पहिये के चक्कर गिनने का यंत्र लगाया और पेरिस से अम्येन गया। अपने पथ के आरंभ और अंत में उसने लकड़ी के तिकोनों से सूर्य का उन्नतांश नापा और फिर पृथ्वी की परिधि की गणना थी। लेकिन ऊबड़-खाबड़ रास्ते और उन्नतांश नापने की अनगढ़ विधि के कारण परिणाम संतोषजनक नहीं निकले। मापने का कोई दूसरा तरीका सोचना चाहिए था। ऐसा तरीका जिसमें ज़मीन का ऊंचा-नीचा होना बाधक न हो।

लगभग सौ साल बाद नीदरलैंड के खगोलविज्ञानी और गणितज्ञ विलेब्रोड स्नैल ने ऐसी विधि सुझायी। इस विधि को उसने त्रिकोणीयन कहा। बड़ी कक्षाओं में जब तुम त्रिकोणमिति पढ़ोगे तो तुम्हें यह अवश्य सिखाया जायेगा कि त्रिभुज की मदद से ऐसी माप कैसे ली जाती है। यह बहुत दिलचस्प है।

अलग-अलग देशों में लंबाई की अलग-अलग नापें थीं। इससे भी वैज्ञानिकों के काम में बहुत बाधा पड़ती थी। उदाहरण के लिए, फ़्रांस में अठारहवीं सदी के अंत तक लंबाई की नाप थी तुआज़। एक तुआज़ छह फ़ुट के बराबर होता था।

उन्हीं दिनों इंगलैंड में लंबाई यार्डों (गज़ों) में नापी जाती थी। एक यार्ड में तीन फ़ुट होते थे। रूस में यह नाप थी साजेन, जो सात फ़ुट के बराबर थी।

छोटे-छोटे राज्यों में बंटे जर्मनी में फ़ुट की लंबाई भी हर राज्य में अलग-अलग थी। इसके अलावा मील भी थे – इंगलैंड का अपना मील, अमरीका का अपना, समुद्र में एक, और थल पर दूसरा।

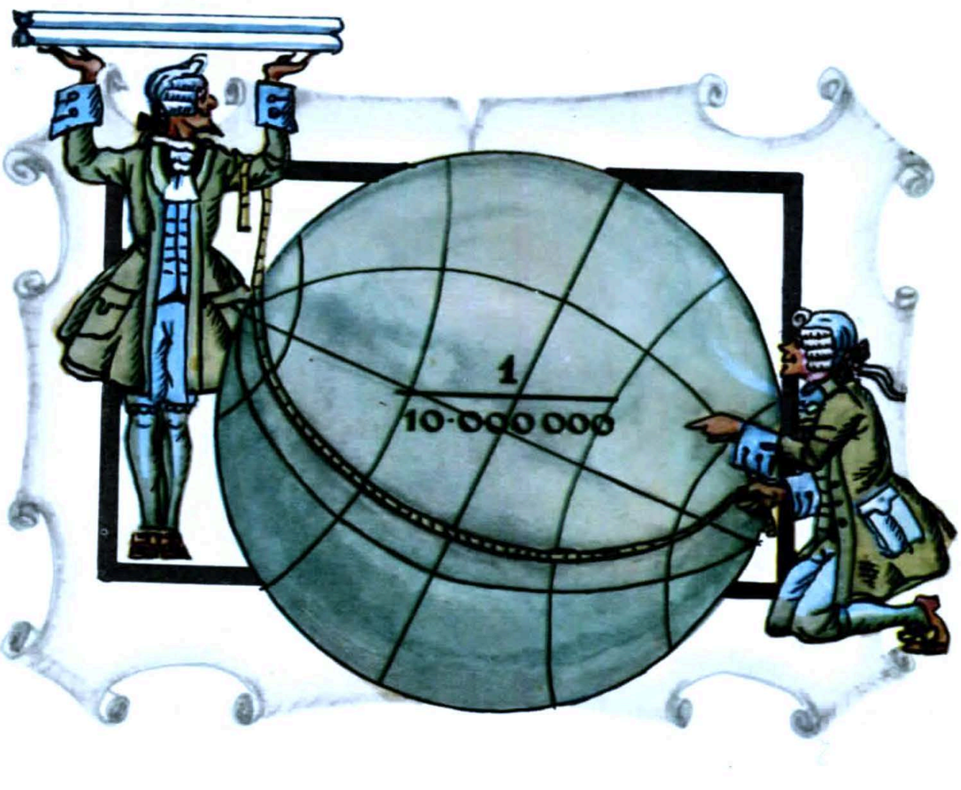




इस सारी गड़बड़ को देखते हुए अनचाहे ही सबके दिमाग में यह बात आयी कि क्यों न सबके लिए एक नाप अपनायी जाये। फ़्रांस के वैज्ञानिकों ने यह सुझाव रखा कि पृथ्वी के याम्योत्तर के एक चौथाई भाग के एक करोड़वें अंश को लंबाई की इकाई माना जाये। फ़्रांस की संसद ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और इस इकाई का नाम मीटर रखा गया।









पृथ्वी सरधे जैसी है या सेब जैसी?



तुम्हें पता है कि सरधे और सेब में क्या फ़र्क है? स्वाद में नहीं, शक्ल में। सरधा दोनों सिरों की ओर लंबूतरा-सा खरबूज़ा होता है और सेब दोनों सिरों पर कुछ-कुछ चपटा होता है। यों तो हर तरह के सरधे और सेब होते हैं, पर चलो, हम ऐसा ही मानेंगे।

सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक किसी को इस बात में कोई संदेह नहीं था कि पृथ्वी एक आदर्श गोला है। लेकिन सहसा यह विश्वास डगमगा गया। हुआ यह कि पेरिस की विज्ञान अकादमी ने पृथ्वी के अलग-अलग बिंदुओं पर याम्योत्तर रेखा की लंबाई नापकर यह निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वी ध्रुवों की ओर ज़रा लंबोत्तरी-सी है, यानी इसका रूप सरधें जैसा है।



आइसक न्यूटन इस बात से सहमत नहीं थे। उनकी गणनाएं यह बताती थीं कि पृथ्वी ध्रुवों पर लंबोतरी नहीं चपटी होनी चाहिए। हालैंड के वैज्ञानिक ख्रिस्तयान ह्यूगेन्स ने भी न्यूटन का समर्थन किया। उनका कहना था कि यदि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, तो वह ध्रुवों पर चपटी होनी चाहिए। इसका प्रमाण देने के लिए उन्होंने निम्न प्रयोग दिखाया: एक डंडी पर गीली मिट्टी का बड़ा-सा थक्का लगाया और इस डंडी को ज़ोरों से घुमाया। नरम मिट्टी का गोला शीघ्र ही सेब जैसी आकृति का हो जाता था।



वैज्ञानिकों में बहस होने लगी। फ़्रांसीसी कहते थे "पृथ्वी ध्रुवों पर लंबोतरी है..." अंग्रेज़ कहते थे "चपटी है, चपटी है..." इस विवाद को हल करने के लिए नये अभियान दल भेजे गये, नये सिरे से याम्योत्तर नापे गये। नये कार्यों से यह प्रमाणित हुआ कि पृथ्वी वाकई ध्रुवों के पास ज़रा चपटी है, हालांकि यह चपटापन एक जैसा नहीं है।

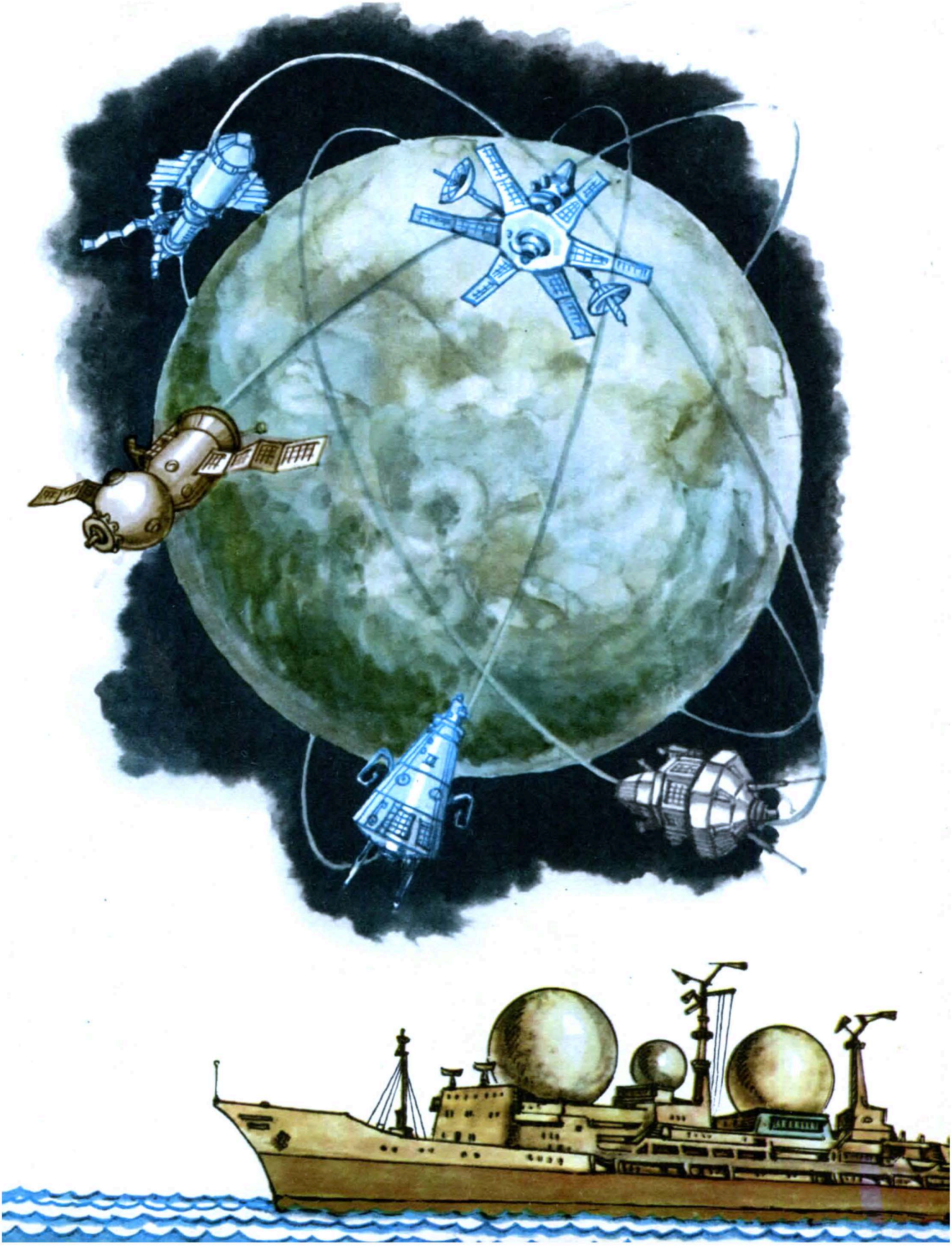
पृथ्वी के रूप का सही-सही पता हमारे दिनों में ही चला है। ४ अक्तूबर १९५७ को सोवियत संघ ने पहला कृत्रिम भू-उपग्रह छोड़ा। इस तरह अंतरिक्ष के व्यावहारिक उपयोग का युग शुरू हुआ।

पहले प्रयास के बाद एक के बाद एक सोवियत राकेट छोड़े जाने लगे। उड़ान संचालन केंद्र में नयी-नयी सूचना की बाढ़ आ गयी।

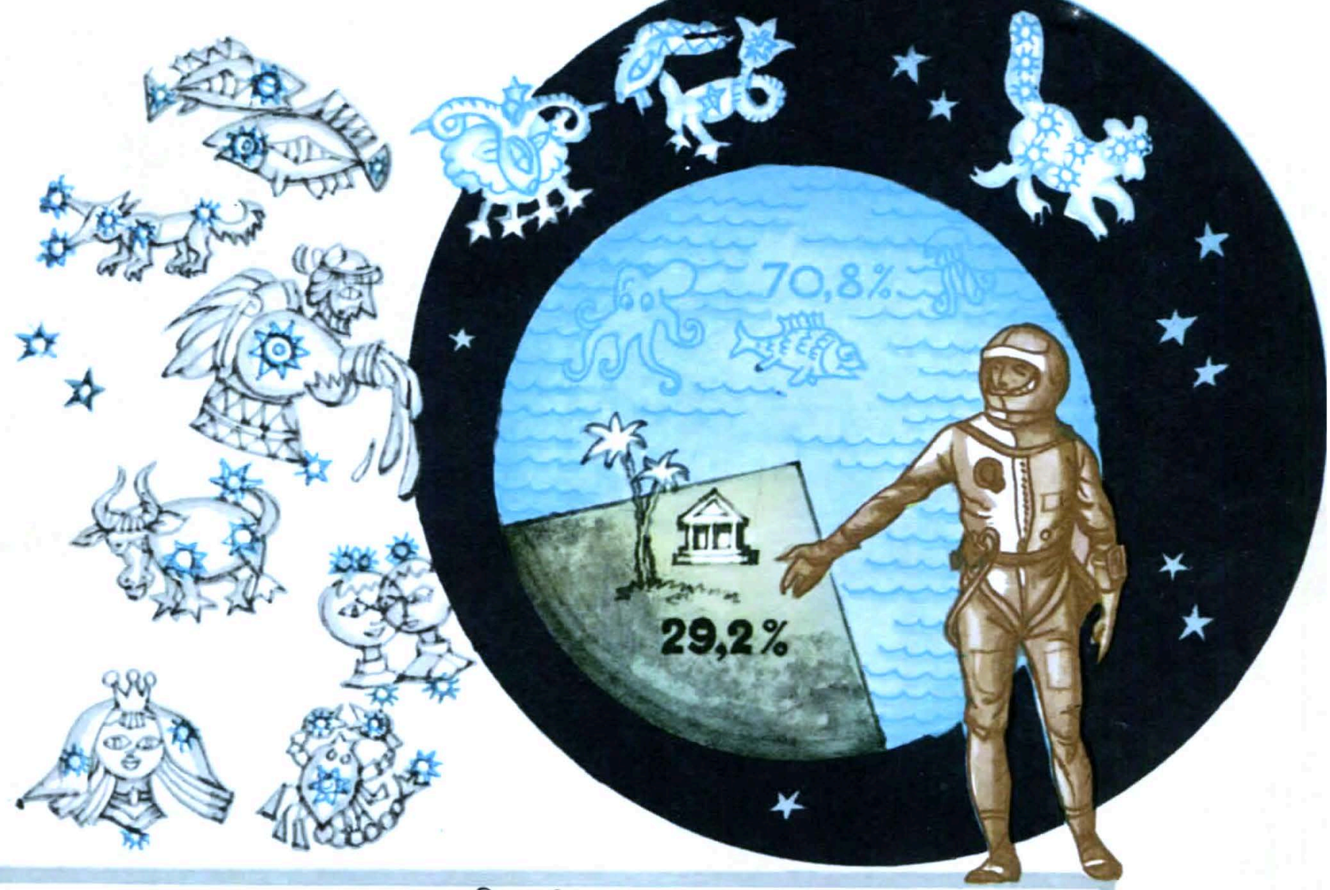
साल भर बाद अमरीका ने भी कृत्रिम भू-उपग्रह छोड़ा। दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में उड़ते इन उपग्रहों का प्रेक्षण करते वैज्ञानिकों ने देखा कि उत्तरी गोलार्ध के ऊपर ये उपग्रह हल्की-सी "डुबकी" लगाते हैं, इनकी कक्षा नीची हो जाती है, मानो कोई चीज़ इन्हें अपनी ओर खींचती है, जबकि दक्षिणी गोलार्ध के ऊपर सब कुछ पूर्ववत रहता है। आखिर इसका कारण क्या है?

कम्प्यूटर दिन-रात गणनाएं कर रहे थे, उधर दोनों महाद्वीपों से नये-नये कृत्रिम भू-उपग्रह उड़ानें भर रहे थे और जानकारी जमा होती जा रही थी। अंततः उत्तर मिल ही गया! पृथ्वी के विपरीत पहलुओं पर, हिंद महासागर के क्षेत्र में और उत्तरी अमरीका के तट से थोड़ी दूर इन उपग्रहों ने काफ़ी बड़े उभारों के होने का पता चलाया। बरसों तक लिये जाते रहे मापों के बाद यह स्पष्ट हो गया कि पृथ्वी उत्तरी गोलार्ध में पृथ्वी ज़रा-सी लंबोतरी है, जबकि दक्षिणी गोलार्ध में ज़रा सी चपटी है और इस तरह एक नाशपाती जैसी है। बेशक यह नाशपाती वैसी चिकनी नहीं है जैसी तस्वीरों में बनायी जाती है, बल्कि ऊबड़-खाबड़ है।

लेकिन यह कहना तो बहुत अच्छा नहीं लगता कि पृथ्वी नाशपातीरूपी है। तो फिर क्या कहा जाये? सो वैज्ञानिकों ने यह तय किया कि पृथ्वी को भू-आभ कहेंगे। बस! इस नाम पर किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। भविष्य में पृथ्वी के रूप के बारे में कितनी भी सही जानकारी क्यों न पा ली जाये, रहेगी वह भू-आभ ही यानी पृथ्वीरूपी ही।







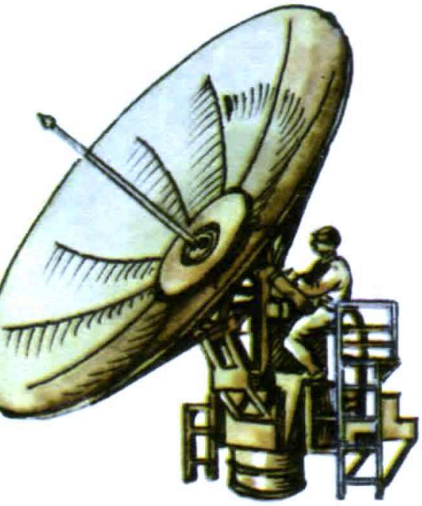
निष्कर्ष

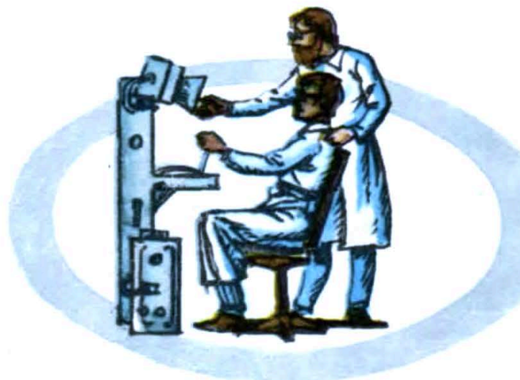
आज पृथ्वी का ध्रुवीय अर्धव्यास ६३.५६.७८० मीटर के बराबर माना जाता है और भूमध्य-रेखा पर इसका अर्धव्यास २१,३८० मीटर अधिक है। बेशक पृथ्वी जैसे "गोले" के अर्धव्यासों के लिये २१ किलोमीटर से ज़रा अधिक कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। लेकिन इसकी वजह से भूमध्यरेखा की लंबाई (४,००,७५,१६० मीटर) पृथ्वी के याम्योत्तर वृत्त की परिधि से १,३४,३३४ मीटर अधिक है। १३४ किलोमीटर तो कम नहीं है।

आज हम पृथ्वी के आकार और रूप के बारे में सभी प्रश्नों का काफ़ी निश्चित उत्तर दे सकते हैं। अब हम उस प्रश्न का भी उत्तर दे सकते हैं, जिसे लेकर प्राचीन भूगोलवेत्ताओं में बहुत बहस होती थी: "पृथ्वी पर थल अधिक है या जल?" जिन बच्चों को सही-सही जानकारी पाने का शौक है उन्हें मैं यह बता सकता हूं कि पृथ्वी के सागरों-महासागरों का कुल क्षेत्रफल लगभग ३६.१ करोड़ वर्ग किलोमीटर है। यह पृथ्वी के कुल क्षेत्रफल का ७०.८ प्रतिशत है। इसका अर्थ है कि थल के लिए केवल २६.२ प्रतिशत क्षेत्रफल बचता है।

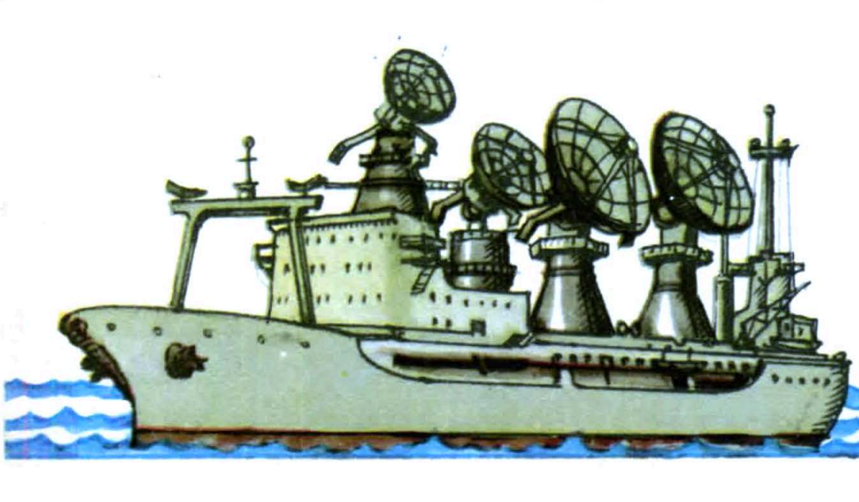
तो, इस अपेक्षाकृत छोटे स्थल पर सारी मानवजाति बसी हुई है। अब मानव पर ही यह निर्भर है कि पृथ्वी फले-फूले, सो हमारा-तुम्हारा काम यह है कि हम अपनी पृथ्वी की रक्षा करें, उसे सजायें-संवारें। इतना लंबा है पृथ्वी के रूप की खोज का इतिहास।

अनुक्रम









А. Томилин
КАК ЛЮДИ ИСКАЛИ ФОРМУ СВОЕЙ ЗЕМЛИ
на языке хинди

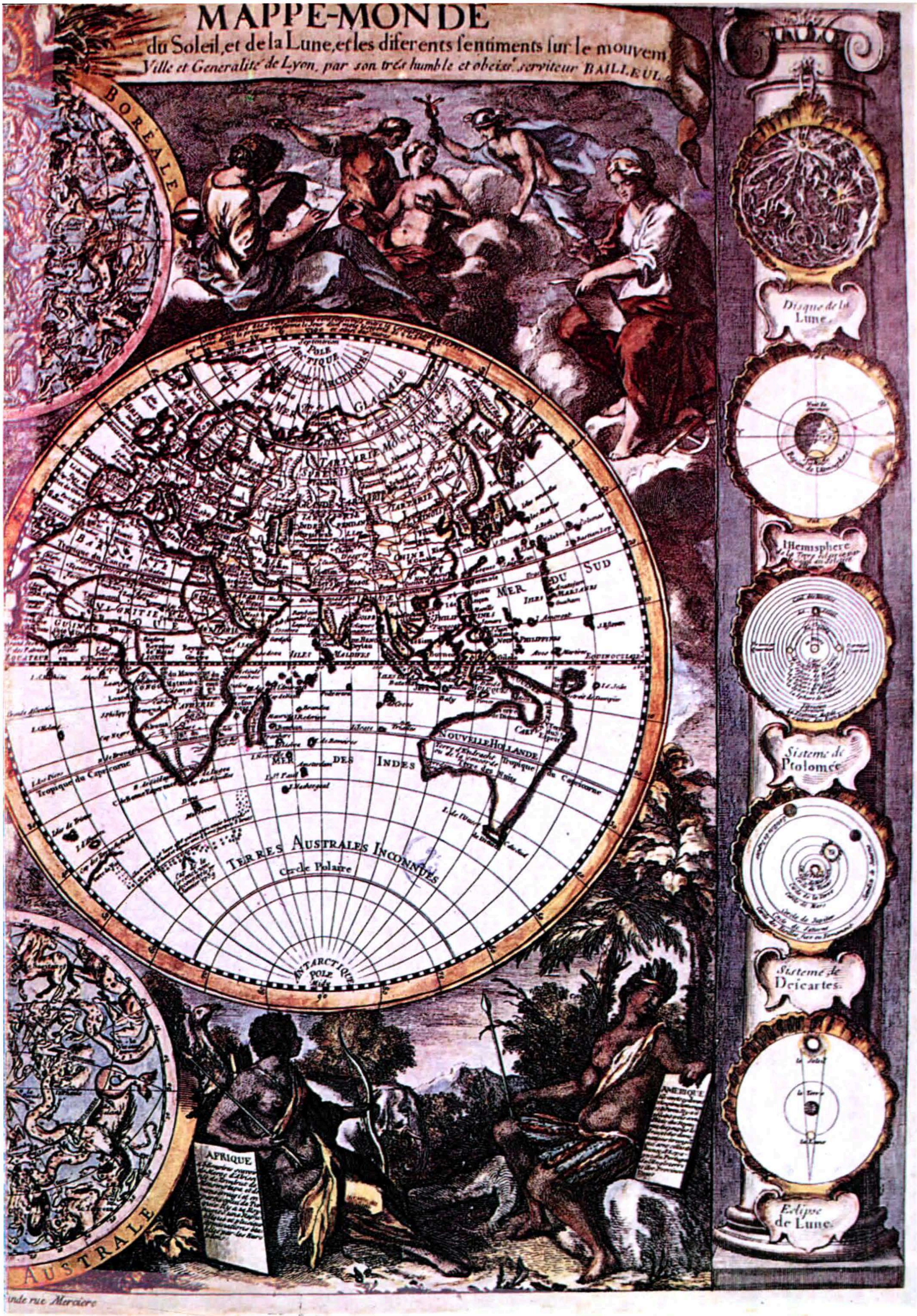
A. Tomilin
HOW PEOPLE DISCOVERED THE SHAPE OF THE EARTH
in Hindi

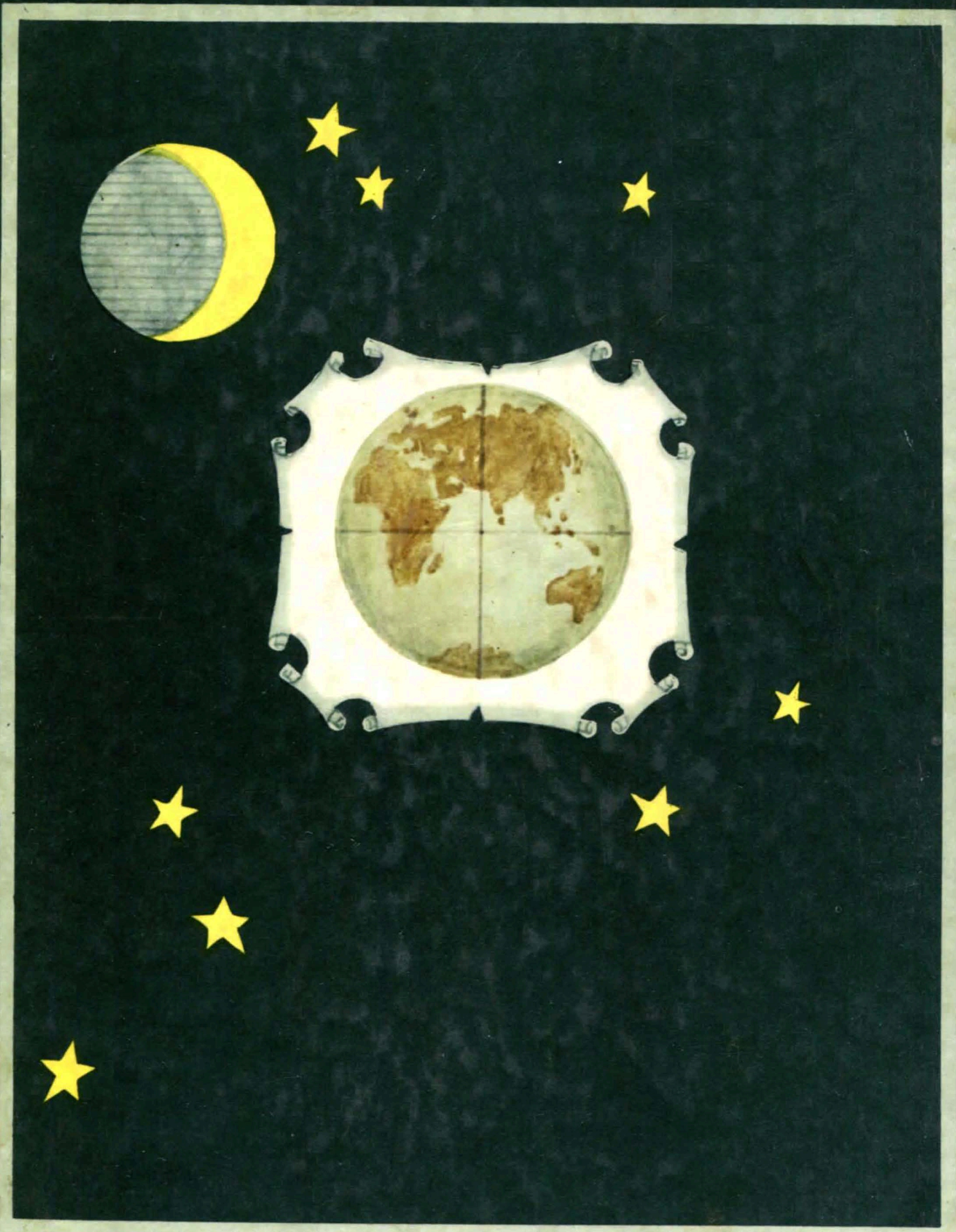
सोवियत संघ में मुद्रित

ISBN 5-05-000987-1



NOUVELLE
avec la representation des deux Emispheres Celestes, les Disques des Planetes. Dédié à Messire BERTRAND RENE' PALLU, Intendant de la
Disque du Soleil.
Hemisphere de la Terre eclairée par Soleil au Solstice d'Été
Sisteme de Copernique
Sisteme de Tico-brahe.
Eclipse de Soleil.
HEMISPHERE
EMISPHERE
Zone Froide Septentrionale
Zone Froide Meridional
Zone Temperée Meridionale
POLE ARCTIQUE
POLE ANTARCTIQUE
Cercle Polaire
MER DU NORD
MER DU SUD ou MER PACIFIQUE
Tropique du Cancer
Tropique du Capricorne
EQUATEUR ou LIGNE
NOUVELLE ZELANDE
AMERIQUE MERIDIONALE
EUROPE
ASIE
9 - 25
A LYON Chez DAUDE


MAPPE-MONDE
du Soleil, et de la Lune, et les diferents sentiments sur le mouvem
Ville et Generalité de Lyon, par son trés humble et obeiss.t serviteur BAILLEUL
BOREALE
POLE ARCTIQUE
MER DU SUD
MER DES INDES
NOUVELLE HOLLANDE
Tropique du Capricorne
Terres Australes Inconnues
Cercle Polaire
ANTARCTIQUE POLE
AUSTRALE
AFRIQUE
AMERIQUE
Disque de la Lune
Hemisphere
Sisteme de Ptolomée
Sisteme de Descartes.
Eclipse de Lune.
nde rue Merciere



ISBN 5-05-000987-1